केरल ज्योति

मार्च 2024

ISSN 2320-9976
UGC Care - List

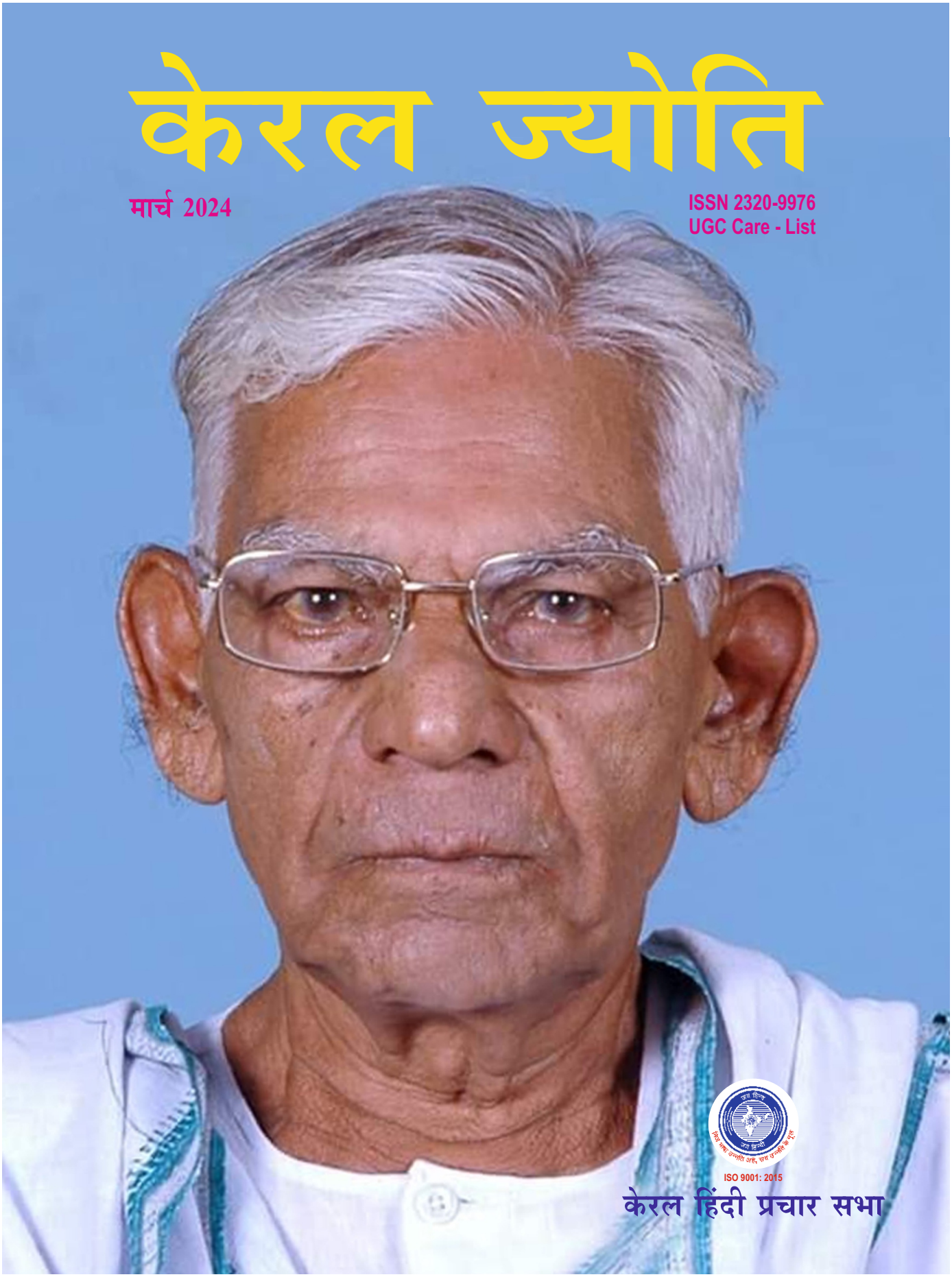

ISO 9001: 2015

केरल हिंदी प्रचार सभा

आदर्श विद्यालय के वार्षिकोत्सव का उद्घाटन केरल के मंत्री श्री. कडन्नपल्ली रामचन्द्रन कर रहे हैं।

श्रीमति दिव्या एस. ऐय्यर आई.ए.एस को आदर्श विद्यालय का भेंट सभा के मंत्री प्रदान करते है।

श्रोतागण

केरलज्योति

केरल हिंदी प्रचार सभा की मुख पत्रिका

(केंद्रीय हिंदी निदेशालय की वित्तीय सहायता से प्रकाशित)

पूर्व समीक्षा समिति

प्रो (डॉ) एन रवींद्रनाथ
डॉ के एम मालती
प्रो(डॉ) आर जयचन्द्रन
प्रो (डॉ) जयश्री एस आर

परामर्श मंडल

डॉ तंकमणि अम्मा एस
डॉ लता पी
डॉ रामचन्द्रन नायर जे

प्रबन्ध संपादक

गोपकुमार एस (अध्यक्ष)

मुख्य संपादक

प्रो डी तंकप्पन नायर

संपादक

डॉ. रंजीत रविशैलम

संपादकीय मंडल

अधिवक्ता मधु बी (मंत्री)
सदानन्दन जी
मुरलीधरन पी पी
प्रो रमणी वी एन
चन्द्रिका कुमारी एस
एल्सी सामुवल
आनन्द कुमार आर एल
प्रभन जे एस
डॉ नेलसन डी

सूचना : लेखकों द्वारा प्रकट किये गये मत उनके अपने हैं। उनसे संपादक का सहमत होना आवश्यक नहीं।

पुष्प : 60 दल : 12 अंक: **मार्च 2024**

अनुक्रमणिका

संपादकीय 5

'अकाल और उसके बाद' : प्रयोगधर्मिता एवं संरचना की नज़र में **प्रो.(डॉ.) मनु** 6

मौन (कविता) – **डॉ. लक्ष्मी.एस.एस** 9

जैनेंद्र कुमार के उपन्यासों में स्त्री–पुरुष संबंधों का स्वरूप **राजलक्ष्मी जायसवाल** 10

हिंदी साहित्य में मानसिक स्वास्थ्य का पोषण : 'मधुशाला' के माध्यम से एक अन्वेषण – **डॉ. मोहसिन गराना** 13

कैसी ये पहेली (कविता) – **केसरबेन राजपुरोहित** 16

पुराण, इतिहास और आज के समय की गहरी पड़ताल करता उपन्यास – **धर्मेंद्र प्रताप सिंह** 17

'उपन्यासकार मेहरून्निसा परवेज़' एक झलक – **डॉ. मिनी.पी.** 19

महिला मुक्ति की चेतनाः हिंदी हाइकु कविता के संदर्भ में – **सजना.वी.ए.** 21

अरुण कमल के काव्य में स्त्री – **श्रुतिकीर्ति अग्निहोत्री** 25

झीनी झीनी बीनी चदरिया में बुनकर जातियों की अधिकार की लड़ाई **डॉ. लिट्टी योहन्नान** 29

समकालीनता में कबीर की भूमिका – **डॉ. जी. सुजिदा** 33

'हमका दियो परदेस में' अभिव्यक्त जेंडर असमानताएँ – **रम्या.एस.** 36

सैकड़ों हनुमंद हाथों की गरिमा – **ऐश्वर्या अनिलकुमार** 39

तीसरा आदमी उपन्यास में स्त्री का मनोवैज्ञानिक पक्ष – **गीतु दास** 43

सुशीला टाकभौरे के उपन्यास "नीला आकाश" दलित विमर्श की नज़र में **दिव्या.एम.एस** 47

स्वयं प्रकाश की कहानी "बाबुलाल तेली की नाक" में चित्रित सामाजिक चेतना - **दिव्या.जी.आर** 50

हाइपर रियालिटी और छलना सिद्धांत – **डॉ.सोफिया राजन** 52

'पट्टिनत्तार' (काव्य) **मूलःपी.रविकुमार, अनुवाद : प्रो.डी. तंकप्पन नायर** 55

देवयानम् (आत्मकथा) **मूल : डॉ.वी.एस. शर्मा, अनुवाद : प्रो. के.एन.ओमना** 57

प्रश्नोत्तरी – **डॉ.रंजीत रविशैलम** 58

*मुखचित्र : **स्वर्गीय कुमारजी (श्री.के.सुकुमारन)***
आप पर विस्तृत विवरण अप्रैल अंक में)

लेखकों से निवेदनः

• हिन्दी और इतर भारतीय भाषाएँ, साहित्य, संस्कृति आदि पर लिखी गयी उच्च स्तरीय मौलिक एवं अप्रकाशित रचनाएँ आमंत्रित हैं। • भाषा, साहित्य, संस्कृति आदि पर आयोजित समारोहों, चर्चाओं, संगोष्ठियों के समाचारों का भी स्वागत है। इन समाचारों को प्रस्तुत करनेवाले का नाम और पूरा पता भी लिख भेजें। • भारतीय भाषाओं से अनूदित कविता, कहानी भी भेजें। उनके साथ मूल लेखक से प्राप्त अधिकार पत्र भी प्रेषित करें। • प्राकाशनार्थ रचनाएँ साफ-साफ अक्षरों में लिखकर अथवा टंकित कर या **डी.टी.पी.** करके **सी.डी.** में भेजें। कृपया कार्बन प्रति न भेजें। • स्वीकृत रचनाएँ यथासमय पत्रिका में प्रकाशित की जाएँगी। • आप ई-मेल द्वारा भी अपनी रचनाएँ भेज सकते हैं। ई-मेल में Microsoft Word or Pagemaker फाइल में भेजिए। ई-मेल आईडी :khpsabha12@gmail.com • अपनी रचना के साथ पूरा पता (जिला, राज्य और पिनकोड सहित), लघु परिचय और फोटो भी भेजें।

संपादक, 'केरल ज्योति', केरल हिन्दी प्रचार सभा,
तिरुवनन्तपुरम-695 014

सभा का मुख्यालय और उसकी गतिविधियाँ

केरल की राजधानी तिरुवनंतपुरम के वषुतक्काड़ में सभा का मुख्यालय स्थित है। सभा के मुख्य परिसर में सभा के संस्थापक मंत्री की पावन स्मृति में श्री वासुदेवन पिल्लै स्मारक हिंदी ग्रंथालय, स्नातकोत्तर अध्ययन अनुसंधान केंद्र, साहित्याचार्य महाविद्यालय, केंद्रीय हिंदी महाविद्यालय, टंकण और आशुलिपि संस्थान, परीक्षा भवन, राष्ट्रवाणी मुद्रणालय, राष्ट्रज्योति पब्लिशेर्स के प्रकाशन अधिकारी का कार्यालय, हिंदी अध्यापक प्रशिक्षण महाविद्यालय (बी.एड़) और केरल विश्वविद्यालय की मान्यता प्राप्त शोध केंद्र हैं।

विज्ञापन दर (साधारण अंक)

	मासिक	वार्षिक
आवरण पृष्ठ 4 (रंगीन)	रु.2500.00	25,000.00
आवरण पृष्ठ 2 एवं 3 (रंगीन)	रु.2000.00	20,000.00
साधारण पृष्ठ पूरा	रु.1000.00	10,000.00
साधारण पृष्ठ 1/2	रु.600.00	6,000.00
साधारण पृष्ठ 1/4	रु.350.00	3,500.00

एक प्रति का मूल्य रु. 25/- ***आजीवन चंदा : रु. 2500/-*** ***वार्षिक चंदा : रु. 250/-***

A /c No. 57022786007 IFS Code : SBIN0070033
State Bank of India, Vazhuthacaud Branch

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें : मंत्री, केरल हिन्दी प्रचार सभा, वषुतक्काडु, तिरुवनन्तपुरम-695 014.
दूरभाष:0471-2321378, 2329200, 2329459. फैक्स:0471-2329200 ई-मेल : khpsabha12@gmail.com

दूरभाष : 0471-2321378, 2329200, 2329459
फैक्स : 0471-2329459
मोबाईल : मुख्य संपादक : 9995680289 संपादक : 7898515222
E-mail : khpsabha12@gmail.com
Website : www.keralahindipracharsabha.com

केरलज्योति
सांस्कृतिक जागरण की मासिक पत्रिका
मार्च 2024

संपादकीय

विश्वभाषा बनने की दिशा में हिंदी

किसी भी भाषा की जीवंतता उसकी व्यापकता से निश्चित होती है। आज हिंदी भारत की राजभाषा, संपर्क भाषा एवं जनभाषा के सोपानों को पारकर विश्वभाषा बनने की दिशा में बड़ी तेजी से अग्रसर है। वर्तमान में हिंदी मातृभाषा और द्वितीय भाषा के रूप में भारत में सर्वाधिक बोली जानेवाली भाषा है। इसके अलावा विश्व के अनेक देशों के स्कूलों और विश्वविद्यालयों में हिंदी में अध्ययन-अध्यापन और शोध कार्य को बढ़ावा दिया जा रहा है। इसके साथ ही सूचना प्रौद्योगिकी, कंप्यूटर प्रयोग एवं व्यावसायिक सभी दृष्टियों से हिंदी पूर्ण विकसित और समृद्ध भाषा के रूप में उभरकर सामने आ रही है। हिंदी एक समृद्ध भाषिक साहित्यिक एवं सांस्कृतिक परंपरा की वाहिनी भी है। वह भारत की एकता और अखंडता की पृष्ठभूमि को मजबूत करने के साथ-साथ 'वसुधैव कुटुंबकम्' की भावना को भी प्रेरित कर रही है। प्रतिष्ठित विद्वान गणेश शंकर विद्यार्थी ने एक बार ऐसा कहा : "एक दिन हिंदी एशिया ही नहीं, विश्व में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करेगी। संसार की कोई भी भाषा मनुष्य जाति को उतना ऊँचा, मनुष्य को यथार्थ में मनुष्य बनाने तथा संसार को सभ्य बनाने में उतनी सफल नहीं हुई जितनी आगे चलकर हिंदी होगी।"

आज संसार के अनेक विश्वविद्यालयों में हिंदी की पढ़ाई हो रही है। संस्थागत और निजी प्रयासों से हिंदी के प्रचार-प्रसार एवं प्रशिक्षण के क्षेत्र में बड़ी संख्या में लोग लगे हुए हैं। इस प्रकार बंग्लादेश, पाकिस्तान, श्रीलंका, भूटान, नेपाल, म्यामार, चीन, जापान, दक्षिण कोरिया, मंगोलिया, थाईलैंड आदि एशियाई देशों में ही नहीं, बल्कि अमेरिका, कनाड़ा, रूस, इंगलैंड, जर्मनी, फ्रांस, इटली आदि पश्चिमी देशों में भी हिंदी की व्याप्ति की ओर अनेक प्रयास हो रहे हैं। विश्व में हिंदी के प्रचार-प्रसार में स्वैच्छिक संस्थायें भी महत्वपूर्ण योगदान कर रही हैं। ऐसी संस्थाओं के द्वारा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हिंदी और भारतवर्ष की कीर्ति फैल जाती है और भारत के विश्वबंधुत्व की भावना संसार के कोने-कोने में पहुँचती है।

खुशी की बात है कि हिंदी को विश्वभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने हेतु और हिंदी को संयुक्त राष्ट्रसंघ की आधिकारिक भाषा बनाने के उद्देश्य की पूर्ति के लिए सारे संसार में व्याप्त हिंदी प्रेमियों द्वारा निरंतर प्रयास हो रहा है। केरल ज्योति परिवार इस प्रयास में जुड़े सबका अभिवादन करता है।

प्रो.डी.तंकप्पन नायर
डॉ.रंजीत रविशैलम

'अकाल और उसके बाद' : प्रयोगधर्मिता एवं संरचना की नज़र में

प्रो.(डॉ.) मनु

क़रीब उनहत्तर सालों पहले सत्तर शब्दों के प्रयोग से नयी प्रयोगधर्मिता की अजीब राह में नागार्जुन जी ने 'अकाल और उसके बाद' नामक नज़्म की अभिव्यक्ति का इज़हार किया है। बढ़ती आबादी अकाल की एक ठोस वजह है। अकाल का ख़ौफ़नाक व दर्दनाक मंज़र वर्तमान बांग्लादेश, पश्चिम बंगाल, बिहार और उड़ीसा में उन्नीस सौ तैंतालीस, चवालीस के दरमियान हुआ था। क़रीब बीस लाख लोगों ने भूख से तड़पकर अपनी जान गंवाई थी। वह दूसरे विश्व महायुद्ध का वक्त था। यह अकाल फितरती या खुदरती नहीं , बल्कि प्रशासनिक था। अपने लाभ के लिए अंग्रेजों ने भारत में मानव इतिहास का भयंकरतम नरसंहार किया और इसके करने वाला कोई और नहीं वरन तत्कालीन ब्रिटिश प्रधानमंत्री विंस्टल चर्चिल था। भारतीयों की मौतों पर उसका कहना था कि "मैं भारतीयों से घृणा करता हूँ। वे जानवरों जैसे लोग हैं जिनका धर्म भी पशुओं जैसा है। अकाल उनकी अपनी ही गलती थी; क्योंकि खरगोशों की तरह जनसंख्या बढ़ाने का काम करते रहे।"(1) 'अकाल और उसके बाद' सत्तर साल पहले लिखी गई यह नज़्म आज भी सियासी लोगों के लिए जरूर ही एक चेतावनी है कि आबादी पे रोकधाम लगाने में बेकामयाब हो जाने पर कभी भी हिंदुस्तान का भविष्य प्रोज्वल नहीं बन जाएगा। जीने की हिन्दुस्तानियों की सहूलियत कम हो जाएगी। इंसान बनकर जानवर की ज़िन्दगी जीने से क्या फायदा? शोध इसकी इतला देना भी सार्थक समझता है। कथ्य या वैचारिक पहलू की व्याख्या करते हुए उसके संरचना पक्ष का अध्ययन करना भी इस शोध तहक़ीक़ का अहम् मकसद है। साथ ही साथ शोध गवाही देता है कि 'अकाल और उसके बाद' की नज़्म के ज़रिये नागार्जुन ने प्रयोगधर्मी कवि का दर्जा भी हासिल किया है।

(बीज शब्द : अकाल , चूल्हा , चक्की, छिपकली, चूहा आदि)

'अकाल और उसके बाद' नागार्जुन की बेहतरीन नज़्मों में एक है। नागार्जुन का नाम हिंदी साहित्य के नक़्शे में प्रगतिशील साहित्यकार या तरक़्क़ी पसन्द अदीब के तौर पर उकेरा गया है। सामाजिक हक़ीकती बातों का बयान ही उनका साहित्यिक सरोकार है। अक्सर देखा जाता है कि अकाल के मरकज़ में आम लोगों का जिक्र ही किया जाता है। बड़े बड़े घरबारों व दरबारों में रहनेवाले अमीर आदमी इस तरह की नज़्मों के दायरे से बाहर ही होते हैं। अकाल के मामले में अख़बारों में जब खबरें आती हैं वह सब झुग्गी के इर्द गिर्द के लोगों के हादसे की बातें होंगीं। अकाल का शिकार हमेशा आम आदमी ही होता है, उसे ही सभी तरह की समस्याओं का सबर करना पड़ता है। नज़्म को सतही तौर पर देखने, परखने पर सिर्फ़ सरल सा लगेगा, मगर पोशीदा माना बहुत ही है। आस व मायूस दोनों के बयान ने नज़्म को एक ऊँचे दर्जे पर पहुँचा दिया है।

घर में अकाल की वजह ग़ुरबत है, खाने पीने के लिए कुछ भी नहीं है, एक प्रगतिवादी या प्रगतिशील कवि सपाट शैली का ही प्रयोग करेगा, मगर कवि ने काव्य शास्त्र में व्यक्त काव्य कुशलता का बेहतरीन प्रदर्शन किया है। अचेतन चीज़ों में चेतनता फूँकने का कवि कर्म यहाँ कवि द्वारा हुआ है। दूसरे जुमले की मदद ले ले तो बेजान चीज़ों को जान देने की प्रक्रिया यहाँ दर्शनीय है। "कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास"(2) 'चूल्हा रोया' और 'चक्की रही उदास' घर की गरीबी दिखाने के लिए किये गये हैं। घर में रोटी नहीं है, दाना भी नहीं है। इसलिए घर में कई दिनों से लेकर चूल्हा चुप्प है, खमोश है, ये चुप्पी और खमोशी ख़ौफ़नाक हैं। काव्य जगत में 'चूल्हा रोया' और 'चक्की रही उदास' दोनों प्रयोग नई काव्य प्रयोगधर्मिता है।

आग और चूल्हे का रिश्ता अटूट है, आग न मिलने की वजह चूल्हा रोता है। भूख, बुभुक्षा, क्षुधा, सूखा, भूखमरी, अकाल, कमी, अभाव आदि का बेहाल दिखाने के लिए कवि ने चूल्हे को रुला दिया है। 'चूल्हा न जला' के माने से भी 'चूल्हा रोया' प्रयोग बेहतरीन है; क्योंकि 'चूल्हा रोया' में मानवीय संवेदना मौजूद है। 'चूल्हा रोया' सिर्फ दो शब्दों से कवि ने अचेतन व बेहोश चीज़ के ज़रिए मानवीय संवेदना को उजागर किया है।अर्थ की चौड़ाई एवं गहराई चूल्हा रोया से भरपूर मिलता है। यह ज़रूर ही कारगर काव्य प्रयोग है। 'चूल्हा रोया', 'चक्की रही उदास' दोनों काव्य में प्रयुक्त प्रयोगधर्मिता की बेहतरीन मिसाल हैं। लाक्षणिक अर्थ का गुंफन क़ाबिल ए जिक्र है। 'चक्की रही उदास' भी नया काव्य प्रयोग है। प्रयोगधर्मिता की दृष्टि से कवि ने एक नया आसमान हमारे सामने रखा है। चक्की को देखकर उसके दुख दर्द को समझना मुश्किल है। लेकिन 'चक्की' में भी कवि ने मानवीय संवेदन को भरा दिया है ।

वैचारिक पहलू पे पैनी नज़र डाल देने पर यह नज़्म दिलोदिमाग में कुछ चिंगारियों का फ़िक्र ज़रूर ही छोड़ देगा। उन्होंने क्यों कुत्ते का इस्तेमाल किये बिना कुतिया शब्द का प्रयोग किया है? हमारे गाँव के लोग अक्सर इस बात पर ज़ोर देते हैं कि घर झोंपड़ी में कुत्ते का पालन न करना है, कुतिया का पालन करना है; क्योंकि कुत्ता न घर का, न गली का रहेगा, मगर कुतिया ज्यादातर वक़्त अपने घर में ही रहेगी। अकाल की वजह हुई बेहाली को दिखाने केलिए कुत्ते से ज़्यादा मुनासिब लफ्ज़ ज़रूर ही कुतिया है । "कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास"[3] चूल्हे के पास कानी कुतिया; सोनेवाले घर की हालत सब जान सकते हैं। 'कानी' विशेषण का इस्तेमाल करके बदसूरती को बेहाली के साथ जुडाके माहौल को शिकस्त बना दिया गया है। "कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त"[4] यहाँ नागार्जुन ने भित्ति के तद्भव रूप का इस्तेमाल किया है। भीत का मामूली अर्थ 'डरा हुआ' है। भीत भित्ति का अर्थ देता है । ये शब्द श्रुतिसम भिन्नार्थक शब्द युग्म के भीतर व्याख्या की गयी । गश्त फारसी शब्द है , इसका अर्थ है पहरा देने के लिए घूमना सरगर्मी के साथ पुलिस दरोगा ही गश्त लगाता है। मगर छिपकलियों को गश्त लगाने का काम देकर एक प्रोज्वल काव्यार्थ, लक्षणा के साथ देने में कवि कामयाब हुए हैं । छिपकलियों की गश्त में भी प्रयोगधर्मिता देख सकते हैं ।

अकाल के साथ अँधेरा भी घर को घेर लिया है। नज़्म में इसका बयान बाहरी तौर पर नज़्म की कतारों में मौजूद नहीं है। मगर 'छिपकलियों की गश्त' में यह माना भी मौजूद है। छिपकलियाँ रात में दीवारों पर कीड़े मकोड़ों व परवानों को पकड़ने के लिए आती हैं। उजाले में ही दीवारों पर कीड़े मकोड़े आदि आते हैं। अँधेरे में ये न आयेंगे। इसका पोशीदा माना है कि घर में दीप नहीं है, दिया नहीं है, उजाला नहीं है। रात में ही दरोगा गश्त लगाती है। वैसे ही छिपकलियाँ भी गश्त लगाती हैं।

'फिर कई दिनों के बाद घर के अंदर दाने आये'। दाने के आने पर घरवालों ने खाना पकाना शुरू कर दिया । इसके बयान के लिए एक नया प्रयोग कवि ने इस्तेमाल किया है । 'धुआँ उठा आँगन से उपर।'[5] इसका मतलब यह है कि चूल्हा आँगन में है और खाने पकाते वक्त जो धुआँ उठता है वह आँगन से उपर उठता है। खुशी के माहौल को व्यक्त करने के लिए 'चमक उठी घर भर की आँखें' का काव्यात्मक प्रयोग किया गया है। खाना मिलने पर कौए ने खुश हो कर अपनी पाँखें खुजलाई ।

इस नज़्म की खासियत यह है कि बिहार के उस अकाल को प्रस्तुत करने के लिए प्रगतिशील तरीके से अलग चलकर प्रयोगधर्मिता की नयी व प्रभावशाली तरीक़े से इस नज़्म का सृजन किया गया है। 'चूल्हा रोया', 'चक्की रही उदास', 'लगी भीत पर छिपकलियों

की गश्त', 'धुआँ उठा आँगन से उपर', 'चमक उठी घर भर की आँखें', 'कौए ने खुजलाई पाँखें' आदि प्रयोगधर्मिता के अंतर्गत आनेवाले लाक्षणिक प्रयोग हैं।

स्त्री पक्षीय भाषा या निस्वानी ज़बान का इस्तेमाल कवि ने अपनी रचना के लिए न करके पुरुष पक्षीय भाषा या बे निस्वानी ज़बान का प्रयोग किया है। इसमें प्रयुक्त ज़्यादार संज्ञाएँ पुल्लिंग ही होते हैं । जैसे कि चक्की, कुतिया, छिपकलियाँ,भीत, गश्त, हालत, आँखें , पाँखें आदि स्त्रीलिंग शब्द होते हैं तो नज़्म में प्रयुक्त कई मर्तबा प्रयुक्त दिन,चूल्हा, चूहा, घर, दाने, धुआं, आँगन, कौआ आदि पुल्लिंग हैं।

दो कालवाचक क्रिया विशेषणों का प्रयोग उन्होंने जान बूझकर किया है। पुनरुक्तिदोष (किसी भी कविता में चाहे किसी शब्द या वाक्य को एक ही अर्थ में बार बार रखना पुनरुक्ति दोष कहलाता है) के बावजूद भी वाक्य रचना मज़बूत एवं अर्थगर्भित हैं। 'तक और बाद' के इस्तेमाल से वक़्त के लम्बे दरमियान की सूचना देने में कवि काफ़ी कामयाब हुए हैं। इसमें तीन स्थान वाचक क्रिया विशेषण का प्रयोग भी दिखाई देता है। जैसे कि पास, अंदर, ऊपर।

बहुत ही सतर्कता से कवि ने शब्दों का चयन किया है। सत्तर शब्दों की कविता में उन्होंने अड़तालीस मुक्ताक्षरों और बाईस बद्धाक्षरों का प्रयोग किया है। अड़तालीस मुक्ताक्षरों के प्रयोग से रचित इस मुक्तक छन्द काव्य में जगण का प्रयोग सबसे अधिक हुआ है। यानी मध्य गुरु वाले गण का प्रयोग हुआ है और सबसे कम मध्य लघुवाले रगण का। दीर्घ मात्राओं और ह्रस्व मात्राओं का प्रयोग बराबर है। एक गुरु, लघु से ज़्यादा है, इसके मुताबिक़ चाहें तो 'अकाल और उसके बाद' की नज़्म को दीर्घ मात्राओं के झुंड की कविता कह सकते हैं।

"मोटे रूप से यदि कोई स्वनिम अलग अलग स्थितियों में अलग अलग रूप ले या अलग अलग रूपों में प्रतिफलित हो तो उसको आर्की स्वनिम कहते हैं।"(6) सिर्फ़ दो तीन आर्की स्वनिम का इस्तेमाल उन्होंने अपनी रचना में किया है तो द्वयाक्षरों के ज़्यादेपन ने नज़्म को सादगी की तरफ़ खींच लिया है। अक्सर सृजन के वक़्त व्यक्तिवाचक संज्ञा का प्रयोग ज़्यादा होता है। मगर कवि ने वस्तु को ही कर्ता के तौर पर अपनी वैचारिक पहलू की अभिव्यक्ति के लिए अधिक इस्तेमाल किया है। कर्ता के तौर पर नौ संज्ञाओं का प्रयोग किया गया हैं। 'चूल्हा', 'चक्की', 'कुतिया', 'गश्त', 'हालत', 'दाने', 'धुआँ', 'आँखें', 'कौआ' आदि नौ संज्ञाएँ कर्ता के रूप में नज़्म में मौजूद हैं। इनमें सकर्मक क्रिया के तौर पर सिर्फ़ एक ही क्रिया का प्रयोग हुआ है। बाक़ी आठ अकर्मक क्रियाओं की मदद से अपनी अभिव्यक्ति को उन्होंने साकार बनाया है। चूल्हा रोया, दाने आये, धुआँ उठा, चक्की उदास रही, कुतिया सोई, गश्त लगी, हालत रही, चमक उठीं, कौए ने खुजलाई, आदि नौ क्रियाओं में छह क्रियाएँ निस्वानी ज़बान की तरफ़ अपनी ¯øÉÊxÉ<ÉE´ÉÉ®ÉEò®nÉÉÒ´É* (The verbs express their inclination towards feminine language.)

काल के कई क़िस्में हैं, मगर माहिर कवि ने सिर्फ़ एक काल का प्रयोग ही इसमें किया है। पूरे नज़्म की तामीर सामान्य भूतकाल के ढाँचे में ही ढाल दिया है । कारकीय संरचना की नज़र से नज़्म की जाँच की जाय तो देखा जा सकता है कि उन्होंने चार कारकों का प्रयोग किया है। जैसे कि अधिकरण (पर), संबन्ध कारक (के/की) अपादान कारक (से) कर्ता कारक (ने) आदि। वर्णों की आवृति से कविता में लयात्मकता आ जाती है। सिर्फ़ लाटानुप्रास को छोड़कर शब्दालंकार अनुप्रास के सभी भेदों का सार्थक प्रयोग इस नज़्म में किया गया है। इसमें लाटानुप्रास की प्रतीति तो है मगर लाटानुप्रास नहीं है। कई दिनों के तक और कई दिनों के बाद। दो से अधिक बार आये हैं , मगर व्यख्या करने पर अर्थ में कोई फ़र्क़ नहीं होता है।

अनुप्रास शब्दालंकार का प्रयोग बहुत खूबसूरती रवैये से कवि ने प्रयोग किया है। पहली, पाँचवीं व सातवीं पंक्तियों में छेकानुप्रास है , (चूल्हा रोया, चक्की रही उदास, में 'च' वर्ण और 'दाने आये घर के अंदर कई दिनों के बाद' में 'द' वर्ण एक ही क्रम में दो बार और 'र' वर्ण शब्दों के अंत में दो बार आयी हैं, चमक उठी घर भर की आँखें कई दिनों के बाद' 'र' वर्ण शब्दों के अंत में दो बार आया है।) तो दूसरी पंक्ति में वृत्यनुप्रस है ('कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास' में 'क' वर्ण एक ही क्रम में दो से अधिक बार आया है) अंतिम पंक्ति श्रुत्यानुप्रास की मिसाल है। इसमें कण्ठ से उच्चरित होनेवाली वर्णों की आवृती हुई है ('चमक उठी घर भर की आँखें कई दिनों के बाद में कण्ठ्य वर्ण की आवृत्ति है। चरणों के अन्त में अन्त्यानुप्रास या तुक के सहारे कवि ने नज़्म को खूब सजा दिया है।

सन्दर्भ संकेत

1. https://hindi.webdunia.com/current-affairs/winston-churchill-bengal-famine-115100100028_1.html हिटलर से कम अत्याचारी नहीं था विंस्टन चर्चिल ।
2 http://kavitakosh.org/kk : नागार्जुन की कविता अकाल और उसके बाद ।
3 http://kavitakosh.org/kk : नागार्जुन की कविता अकाल और उसके बाद ।
4 http://kavitakosh.org/kk : नागार्जुन की कविता अकाल और उसके बाद ।
5 http://kavitakosh.org/kk : नागार्जुन की कविता अकाल और उसके बाद ।
6 भोलानाथ तिवारी : हिंदी भाषा की संरचना, पृ 50

प्रोफसर & विभागाध्यक्ष
सेंट्रल यूनिवर्सिटी ऑफ केरल, कासरगोड

कविता

मौन

डॉ. लक्ष्मी.एस.एस

मौन एक भाषा है,
जिसकी वाणी परिपक्व है।
मौन एक भाव है,
जिसमें तीव्र अभिव्यंजना है।
मौन एक साधना है,
जिसमें परिपावनत्व है।
मौन एक प्रक्रिया है,
जिसमें प्रतिरोध और प्रतिशोध भी।
मौन एक बहाना है,
जिसके पास फुरसत नहीं।
मौन एक हथियार है,
जिसकी शक्ति परम है।
मौन कभी ऊर्जा देता है
तो कभी मार।
मौन कभी वाणी को विराम देता है
तो कभी शुरुआत
ज्यों मौन संगीत है त्यों अनंत काल
तक उसका निशान रहे।

असिस्टेंट प्रोफसर, हिंदी विभाग
एम.जी.कॉलेज, तिरुवनंतपुरम

जैनेंद्र कुमार के उपन्यासों में स्त्री-पुरुष संबंधों का स्वरूप

राजलक्ष्मी जायसवाल

सार संक्षेपण- मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार जैनेन्द्र जी ऐसे पहले कथाकार थे जिन्होंने अपने उपन्यासों में स्त्री पुरूष सम्बधों का मनोवैज्ञानिक चित्रण किया, कि किस प्रकार एक स्त्री-पुरुष अपने संबंधो में आयी कड़वाहट के कारण समाज और परिवार के बीच पिसते रहते है। जैनेन्द्र के नारी पात्र अत्यंत शोचनीय हैं। भौतिकता के युग में जैनेन्द्र स्त्री एवं पुरूषों के विकास के लिए जागरूक है। स्त्री पुरूष प्रवृतियों का गहन विश्लेषण इनके उपन्यासों में साफ-साफ दिखाई देता है। नर-नारी चिन्तन के चितेरे जैनेन्द्र जी का मुंशी प्रेमचंद के बाद हिन्दी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है और यही कारण है, कि उपन्यासों के दौर में उनका महत्व अपनी चरम सिमा पर है। उन्होंने अपने उपन्यासों में स्त्री-पुरूष को कई दृष्टिकोण से देखने में शामिल किया है। समाजिक मूल्यों की चिन्ता किये बगैर उन्होंने समाज में व्याप्त स्त्री-पुरूष संबंधो का कठोर यथार्थ स्वरूप की खोज की है तथा समाज को इस खोज की गहराई से रूबरू करवाया है। जैनेन्द्र अपने उपन्यासों में अपने भीतर की गहराई को खोजते नजर आते है।

मूल शब्दः- मनोवैज्ञानिक, कड़वाहट, भौतिकता, विश्लेषण, प्रवृत्ति, चितेरे, चिन्तन, दृष्टिकोण, स्वरूप।

शोध आलेख- प्रेमचंदोत्तर युग के साहित्यकार जैनेन्द्र कुमार ने साहित्य जगत में अपनी अलग प्रकार की पहचान कायम की है। जैनेन्द्र ऐसे प्रथम व्यक्तिवादी और मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार है जिन्होंने पहली बार व्यक्तिवादी रहस्यों का बड़ी सूक्ष्मता के साथ अपने उपन्यासों में अंकन किया है। जैनेन्द्र के उपन्यास वस्तु प्रधान नहीं बल्कि भाव प्रधान है, वे व्यक्ति के मन का विवेचन और विश्लेषण बड़ी बारीकी से करते है। यही कारण है कि जैनेन्द्र का स्तम्भ साहित्य जगत में अत्यंत ऊँचा है। जैनेन्द्र की रचनात्मक दृष्टि का अवलोकन करते हुए कहा जा सकता है कि "उनके उपन्यासों का परिवेश सीमित है और वस्तु मानव व्यवहार की कुछ विडम्बनाओं तक अपनी सीमाएँ निर्धारित करती हैं। इसके बावजूद 'परख' से 'अनामस्वामी' तक जैनेन्द्र के उपन्यास रोचक और पठनीय है और उनसे गुजरना प्रायः एक मार्मिक अनुभव है। यहाँ तक कि अपनी विफलता से भी वे अद्वितीय है।"[1] जैनेन्द्र जी द्वारा रचित 'परख' हिन्दी का पहला मनोविश्लेषणात्मक उपन्यास है। इस उपन्यास में जैनेन्द्र ने स्त्री-पूरुष के स्वातंत्र्य संबंध की आवाज को बुलन्द किया है। 'परख' उपन्यास में पात्र, विधवा कट्टो एवं आदर्शवादी सत्यघन के मानसिक तनावों का विश्लेषण हुआ है; इस उपन्यास में परिवार की रक्षा के लिए स्त्री-पुरुष पात्र स्वयं टूट जाते है किन्तु परिवार को टूटने नहीं देना चाहते। कट्टो से विवाह की बात सोचते ही सत्यघन के आगे गाँव, माँ और बिरादरी का प्रश्न निर्माण हो जाता है। जैनेन्द्र के कथनानुसार "स्त्री और पुरूष तत्वों में एक अमोघ आकर्षण है। उनको संघर्ष कहो तो भी वही बात है।"[2] स्त्री पुरुष सम्बन्ध चिन्तन का विषय है। जैनेन्द्र ने अपने उपन्यासों में स्त्री-पुरुष के बीच सम्बन्धों को अधिक महत्व दिया है, जिसमें उन्होंने उनके बीच पनपती जटिलताओं को प्रदर्शित किया है। जैनेन्द्र संचार को 'नर-नारीमय' मानते हैं। और स्त्री-पुरुष के इन विविध सम्बन्धो को चिन्तन धारा इनके उपन्यासों

में परिलक्षित होती हैं। 'परख' उपन्यास में सत्यधन और गरिमा का दाम्पत्य सम्बन्ध व्यावहारिक समझौता है। कट्टो बिहारी से कहती है, "उस यज्ञ के लिए सब से सुन्दर शब्द है मेरे पास 'वैधव्य'। अर्थ है- आत्म आहुति। बँधते हो?"[3] दोनों एक आध्यात्मिक समझौते के आधार पर दाम्पत्य सम्बन्धों में बँधते है। इस प्रकार स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध जुड़ने से उन्होंने संसार में अध्यात्म के व्यापक स्वरूप को चित्रित किया है। विभिन्न प्रकार की परिस्थितियों के कारण समाज में स्त्रि-पुरुष संबंधो में समझौता करते नजर आते है। स्त्री-पुरुष सबंध समाज द्वारा मान्य रीतियों, परम्पराओं, नियमों और मान्यताओं को स्वीकार करते हुए कुछ उसके अनुकूल जीवन व्यतीत करते है। परख में स्त्री-पुरूष के प्रति जैनेन्द्र ने सुधारवादी समाजिक दृष्टि को अपनाया है। स्त्री-पुरूष के बीच मानसिक सम्बन्धों उनसे निर्मित समस्याओं और घटनाओं का सम्बन्ध मनोविज्ञान से होता है। "जैनेन्द्र के उपन्यासों में स्त्री-पुरूष पात्रों की काम पर प्रेम की जीत अधिक है। कट्टो, सत्यधन दोनों का प्रेम काम भाव पर रोक लगा आगे बढ़ता है।"[4]

'सुनीता' जैनेन्द्र के बहुचर्चित उपन्यासों में से एक है। यह उपन्यास भारतीय समाज में विवाह के पवित्र बन्धन में बंधने वाली नारी पुरूष की सहधर्मिणी तथा सहचारिणी बनी पत्नी अपना सत्व पति को समर्पित करके पति के प्रति श्रद्धा और निष्ठापूर्वक आचरण करके ही सतीत्व को प्राप्त करती है। डॉ. निर्मला शर्मा का कथन है "श्रीकान्त, उपन्यास में एक मित्र परायण तथा पत्नी परायण व्यक्ति के रूप में चित्रित हुआ है।"[5] 'सुनीता' उपन्यास में श्रीकान्त और सुनीता दोनों का मानना है कि "विवाह निबाहने योग्य संस्था है, परीक्षण के लिए ही समझ लिया जाय और कानून तोड़ने के लिए? क्या, सच मानवता नही कायम है और जो विवाह पर टिकी है?"[6] 'सुनीता' उपन्यास में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों में इन्द्रिय भोग ही परस्पर आकर्षण बनाये रखता है।

'त्यागपत्र' जैनेन्द्र की प्रसिद्धि का एक महत्वपूर्ण अंग है इसमें विवाह पूर्व प्रेम, उसका अन्यत्र विवाह में बाधक होना, विवाह, अनमेल विवाह, विवाह का टूटना और पति द्वारा परित्यक्त नारी की स्थिति के माध्यम से प्रेम और विवाह की समस्या को उठाया गया है। "ब्याहता को पतिव्रता होना चाहिए। उनके लिए पहले उसे पति के प्रति सच्ची होना चाहिए। सच्ची बनकर ही समर्पित हुआ जा सकता है।"[7] 'त्यागपत्र' मानव आत्मा की सबसे बड़ी ट्रेजडी है। इसमें पुरुष की आवश्यकता स्त्री में दिखाई देती है। तथा पति-पत्नी के बीच राग द्वेष से विच्छेद की स्थिति पैदा होती है इसका चित्रण भी त्यागपत्र उपन्यास में मृणाल कोयले वाले की कृतज्ञता को देखकर खुद को उसे समर्पित कर देती है।

'कल्याणी' जैनेन्द्र का चौथा उपन्यास है इसमें उन्होंने एक कामकाजी स्त्री एवं पुरुष का चित्रण किया है, इस उपन्यास में एक ओर पुरुष प्रधान समाज तो दूसरी ओर नारी स्वातंत्रय की समस्याओं को चित्रित किया गया है। डॉ. कल्याणी जो आधुनिक कमाऊ नारी है वह इस उपन्यास में डॉ. असरानी की सन्देहशीलता के कारण सबके सामने पीटती अपने पति से विनती करती नजर आती है कि दोनों में से कोई एक मुझे चुनकर दे दो। पतिव्रत या डॉक्टरी। मैं पति परायण हो जाउँ या डॉकटरी की कमाई कर के दूँ। दोनों साथ होना कठिन है। पैर दो नाव पर रहेंगे तो हालत डगमग रहेगी।"[8]

'सुखदा जैनेन्द्र का पाचवाँ उपन्यास है, इसमें विवाह के पहले की गई कल्पनाओं के कारण बिखरते

दाम्पत्य जीवन का चित्रण किया गया है। इस उपन्यास में कान्त कहता हुआ दिखता है "गलती हुई है, सुखदा, तुम्हारी शादी ऊँची जगह होनी चाहिए थी।"[9]

'विवर्त' उपन्यास में जैनेन्द्र ने प्रेम और विवाह की त्रिकोणात्मक चेतना के साथ-साथ वर्ग भेद के फल स्वरूप उत्पन्न आर्थिक समस्या को प्रस्तुत किया है। नायक जीतेन गरीबी तथा असफल प्रेम से कुण्ठित नजर आता है। तीसरी पात्र तिन्नी, मोहिनी को प्रेम स्वीकार करने के लिए कहती है, "बहन! पुरूषों की और बात है वे तो प्रेम के लिए है नही, पर हम स्त्रियाँ प्रेम को स्वीकार नही करेंगी तो कहाँ जायेंगी।"[10]

'व्यतीत' जैनेन्द्र का सातवाँ उपन्यास है। इसमें अहम और कुण्ठित मानसिकता से पीड़ित एक पुरुष का अनेक स्त्रियों से प्रेमाचार को प्रस्तुत किया गया है। इस उपन्यास में नायक जयंत, अनिता के वियोग में सब कुछ खो देता है और कहता है, क्योंकि उसे खोकर मैंने जाना सदा के लिए स्त्री-पुरूष पात्र पहले प्रेम करते है फिर बिछुड़ते हैं।"[11] 'जयवर्धन' जैनेन्द्र का नवीनतम उपन्यास है इसमें जैनेन्द्र ने त्रिकोणात्मक प्रेम के साथ राजनैतिक आर्थिक एवं औद्योगिक क्रिया प्रतिक्रिया से परिपूर्ण किया है। नायिका इला जयवर्धन की विवाहिता पत्नी नहीं पर प्रेमिका है। इस पर स्पष्ट लिखता है "जिसमें आरोप नहीं है, न अपेक्षा जो आत्मव्यथा में तुष्ट है और वही कृतार्थ है, उस वीतरागी प्रेम को समझना कठिन होता है।"[12] 'मुक्तिबोध' उपन्यास पत्नी और प्रेमिका के बीच सामंजस्य स्थापित न करने वाला व्यक्तित्व 'सहाय' का चित्र प्रस्तुत करता है। "आदमी सपने के लिए जीता है और औरत उस सपने के आदमी के लिए जीती है"[13] स्त्री पुरुष के बीच शारीरिक आकर्षण स्वाभाविक है लेकिन सामाजिक मर्यादाओं के कारण इसमें अरुचि उत्पन्न होती है और इसी बनते बिगड़ते स्त्री-पुरुष के जीवन की कड़ियों को जैनेन्द्र ने अपने उपन्यासों में जोड़ा है।

निष्कर्ष- निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि स्त्री-पूरुषों के संबंधो का स्वरूप तथा नैतिकता की नयी व्याख्या हमें जैनेन्द्र के उपन्यासों में मिलती है। जहाँ वे स्त्री-पुरुष को सामाजिक मर्यादाओं में बाँधकार उन्हें नैतिक आधार प्रदान करते हैं। और वे अपने-अपने उपन्यासों में स्त्री-पुरुष पात्रों को एक साथ मर्यादाओं में रहकर खुला जीवन जीने की भी छूट देते हैं। जैनेन्द्र सहज आकर्षण जिसे वे जीवात्मा और परमात्मा का आकर्षण मानते हैं। यही कारण है कि जैनेन्द्र के स्त्री-पुरुष पात्र विवाहित हो या अविवाहित, प्रेम के द्वारा स्त्री-पुरुष आत्मीयता के बंधन में बंध सकते हैं। क्योंकि स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों में समाज की मान्यता से आत्मा की मान्यता अधिक ऊपर है।

संदर्भ

1) जैनेन्द्र और उनके उपन्यास; डॉ परमानन्द श्रीवास्तव, पृ.-25
2) काम, प्रेम और परिवार; जैनेन्द्र कुमार पृ.-128
3) परख; जैनेन्द्र कुमार, पृ.-96
4) हिन्दी उपन्यासों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन; डॉ. एम. वैकटेश्वर पृ.-25
5) शरत एवं जैनेन्द्र के उपन्यासों में वस्तु एवं शिल्प; डॉ. निर्मला शर्मा पृ.-225
6) सुनीता; जैनेन्द्र कुमार पृ. सं.-12
7) त्यागपत्र; जैनेन्द्र कुमार पृ. सं.-40
8) कल्याणी; जैनेन्द्र कुमार पृ. सं.-69
10) विवर्त; जैनेन्द्र कुमार पृ. सं.-21
11) व्यतीत; जैनेन्द्र कुमार पृ. सं.-34
12) जयवर्धन; जैनेन्द्र कुमार पृ. सं.-194
13) मुक्तिबोध; जैनेन्द्र कुमार पृ. सं.-79

शोधार्थी , हिन्दी विभाग
रांची विश्वविद्यालय, रांची

हिंदी साहित्य में मानसिक स्वास्थ्य का पोषण : 'मधुशाला' के माध्यम से एक अन्वेषण

डॉ. मोहसिन गराना

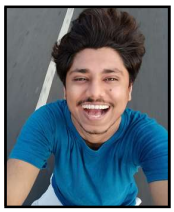

परिचयः हिंदी साहित्य, शब्दों की अपनी समृद्ध और गहन कहानी कहने के साथ, लंबे समय से मानव अस्तित्व की जटिल भूलभुलैया से गुजरने वाले व्यक्तियों के लिए सांत्वना, प्रतिबिंब और प्रेरणा का स्रोत रहा है। इस विशाल साहित्यिक परिदृश्य के भीतर, एक चमकता हुआ रत्न जिसने दिल और दिमाग दोनों पर अमिट छाप छोड़ी है, वह है प्रसिद्ध कवि हरिवंश राय बच्चन की 'मधुशाला'। यह कालजयी कृति, जिसका अंग्रेजी में अनुवाद 'द टैवर्न' है, केवल छंदों का संग्रह नहीं है, बल्कि जीवन की यात्रा, उसके कष्टों और पूर्णता की खोज का गहन अन्वेषण है।

'मधुशाला' पाठकों को एक काव्यात्मक यात्रा पर आमंत्रित करती है, जहाँ प्रत्येक कविता मानवीय भावनाओं और आकांक्षाओं की जटिलताओं से गूंजती है। अपने विचारोत्तेजक रूपकों और गहन दार्शनिक विषयों के माध्यम से, यह स्पष्ट हो जाता है कि यह कार्य एक मात्र कविता से कहीं अधिक है - यह मानव आत्मा का दर्पण है। छंद अस्तित्व की क्षणिक प्रकृति, अल्पकालिक खुशियों और जीवन के गंभीर परीक्षणों का पता लगाते हैं। वे पाठकों को उनके अस्तित्व के सार पर विचार करने, आत्मनिरीक्षण और उनके भावनात्मक परिदृश्य की गहरी समझ को प्रोत्साहित करने के लिए मजबूर करते हैं।

मानसिक स्वास्थ्य पर हिंदी साहित्य के गहरे प्रभाव की इस खोज में, हम यह समझने के लिए 'मधुशाला' के मादक क्षेत्रों का भ्रमण करेंगे कि कैसे इसके छंद मानव मानस को उत्थान, सांत्वना और पोषण देने की शक्ति रखते हैं। इस प्रतिष्ठित कार्य के माध्यम से, हम उन जटिल तरीकों का पता लगाएंगे जिनसे साहित्य किसी व्यक्ति की मानसिक भलाई को आकार दे सकता है और बढ़ा सकता है, आत्म-खोज और भावनात्मक संवर्धन के मार्ग पर एक अमिट छाप छोड़ सकता है।

जैसे ही हम 'मधुशाला' के छंदों के माध्यम से इस यात्रा पर आगे बढ़ेंगे, हम पाँच प्रमुख आयामों का पता लगाएंगे जिनके माध्यम से हिंदी साहित्य, और विशेष रूप से यह प्रतिष्ठित कार्य, किसी व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव डालता है।

दार्शनिक चिंतनः 'मधुशाला' के छंदों के भीतर, पाठकों को दार्शनिक प्रतिबिंब का एक गहरा आयाम मिलता है जो मात्र कविता की सीमाओं को पार करता है। हरिवंश राय बच्चन की कविताएँ उन गहरे सवालों का पता लगाने के लिए एक मनोरम माध्यम के रूप में काम करती हैं जो अक्सर मानव मन के भीतर रहती हैं।

'मधुशाला' का दार्शनिक सार अस्तित्व की क्षणिक प्रकृति के चिंतन में निहित है। शराबखाने और शराब पीने की क्रिया के रूपक संकेतों के माध्यम से, कविता रूपक रूप से जीवन को क्षणभंगुर क्षणों और अनुभवों की एक शृंखला के रूप में चित्रित करती है। पाठक खुशी और दुख, सफलता और विफलता, प्रेम और हानि की क्षणभंगुर प्रकृति पर विचार करने के लिए मजबूर हैं।

ऐसा करने पर, 'मधुशाला' एक दर्पण बन जाती है जो जीवन की नश्वरता को दर्शाती है, पाठकों को खुशी और संतुष्टि के वास्तविक सार पर सवाल उठाने के लिए आमंत्रित करती है। यह उन्हें उन भौतिक गतिविधियों से परे देखने के लिए प्रोत्साहित करता है जो अक्सर हमारे जीवन में व्यस्त रहती हैं और आत्म-

खोज और आंतरिक संतुष्टि के गहन क्षेत्र में उतरती हैं।

भावनात्मक प्रतिध्वनिः 'मधुशाला' एक काव्यात्मक कृति है जो भावनाओं की एक मनमोहक कशीदाकारी बुनती है, पाठकों को एक भावनात्मक यात्रा पर जाने के लिए आमंत्रित करती है जो मानव आत्मा के साथ गहराई से जुड़ती है। इस प्रतिष्ठित कविता के छंदों के भीतर पाई जाने वाली भावनात्मक गूंज साहित्य की जागृति, सहानुभूति और उपचार की शक्ति का प्रमाण है।

हरिवंश राय बच्चन के शब्द भाषा और संस्कृति की सीमाओं को पार करते हुए, जीवन के सभी क्षेत्रों के पाठकों के दिलों को छूते हैं। ज्वलंत कल्पना और मार्मिक रूपकों के माध्यम से, कविता भावनाओं के एक स्पेक्ट्रम की पड़ताल करती है - जीवन की खुशियों की मादक उँचाइयों से लेकर उसके परीक्षणों की गहरी गहराइयों तक। प्रत्येक कविता पाठक के स्वयं के भावनात्मक परिदृश्य को प्रतिबिंबित करने वाला दर्पण बन जाती है, जिससे पाठ और व्यक्ति के बीच गहरा संबंध बनता है।

इस भावनात्मक अनुनाद के भीतर 'मधुशाला' की चिकित्सीय क्षमता निहित है। जैसे-जैसे पाठक कविता के छंदों से जुड़ते हैं, उन्हें मानवीय भावनाओं के साझा अनुभव में सांत्वना मिलती है। वे अपनी आशाओं, सपनों, संघर्षों और विजयों को छंदों में प्रतिबिंबित देखते हैं, जिससे सहानुभूति और समझ की भावना बढ़ती है।

इसके अलावा, 'मधुशाला' भावनात्मक अभिव्यक्ति के लिए एक सुरक्षित स्थान के रूप में कार्य करती है। यह पाठकों को अपनी भावनाओं और अनुभवों का सामना करने और संसाधित करने की अनुमति देता है, एक रेचक मुक्ति की पेशकश करता है जो तनाव, चिंता और दबी हुई भावनाओं को कम कर सकता है। यह भावनात्मक रेचन सकारात्मक मानसिक स्वास्थ्य को बनाए रखने का एक महत्वपूर्ण पहलू है, और 'मधुशाला' इस चिकित्सीय रिहाई के लिए एक मंच प्रदान करती है।

लचीलापन और आशावादः 'मधुशाला' के छंदों के भीतर, पाठकों को लचीलापन और आशावाद का एक स्रोत मिलता है जो जीवन की जटिलताओं के माध्यम से मार्गदर्शक प्रकाश के रूप में कार्य करता है। हरिवंश राय बच्चन की काव्य प्रतिभा ज्वलंत कल्पनाओं को चित्रित करने से कहीं अधिक करती है; यह मूल्यवान जीवन सबक प्रदान करता है और अटूट शक्ति और सकारात्मकता की मानसिकता विकसित करता है।

'मधुशाला' अस्तित्व की दोहरी प्रकृति को स्वीकार करती है - खुशियाँ और दुख, सफलताएँ और असफलताएँ, हँसी और आँसू। यह जीवन की चुनौतियों से घबराता नहीं है; बल्कि, यह उन्हें मानवीय अनुभव के अभिन्न अंग के रूप में अपनाता है। इस स्वीकृति के माध्यम से, कविता पाठकों को लचीलेपन के साथ विपरीत परिस्थितियों का सामना करने के लिए प्रोत्साहित करती है।

मधुशाला की कल्पना और शराब पीने की क्रिया जीवन के अनुभवों को, चाहे मीठा हो या कड़वा,समता के साथ अपनाने की प्रक्रिया का प्रतीक है। यह मानसिकता व्यक्तियों को कठिनाइयों का सामना करने, सहन करने और दृढ़ रहने की शिक्षा देकर मानसिक लचीलेपन को बढ़ावा देती इसके अलावा, 'मधुशाला' आशावाद का परिचय देती है। यह जीवन को संभावनाओं और अवसरों से भरी यात्रा के रूप में मनाता है। यह पाठकों को जीवन के क्षणों की मिठास का आनंद लेने और दुनिया की अंतर्निहित अच्छाई में अटूट विश्वास बनाए रखने के लिए प्रोत्साहित करता है। यह आशावाद मानसिक शक्ति का स्रोत बन जाता है, जो व्यक्तियों को चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों में भी सकारात्मक दृष्टिकोण बनाए रखने में सक्षम बनाता है।

पलायन और विश्रामः 'मधुशाला' साहित्यिक पलायनवाद का एक अनूठा रूप प्रस्तुत करती है, जो पाठकों को अपने दैनिक जीवन की मांगों और तनावों से अस्थायी रूप से अलग होने के लिए आमंत्रित करती है। हरिवंश राय बच्चन के मनमोहक छंद एक मनोरम क्षेत्र का निर्माण करते हैं जहाँ व्यक्ति सांत्वना, विश्राम और एक बहुत जरूरी राहत पा सकते हैं।

नशीले पेय के आकर्षण से भरी एक मधुशाला की कविता की कल्पना, सामान्य से एक रूपक मुक्ति प्रदान करती है। पाठकों को इस काल्पनिक दुनिया में ले जाया जाता है, जहां वे उन जिम्मेदारियों और चिंताओं से क्षण भर के लिए अलग हो सकते हैं जो अक्सर उन पर दबाव डालती हैं। इस क्षेत्र में, वे शांति का अभयारण्य और विश्राम का स्रोत पाते हैं।

जीवन की आपाधापी के बीच, 'मधुशाला' एक साहित्यिक नखलिस्तान बन जाती है, जो पाठकों को रुकने और विचार करने का मौका देती है। यह साहित्यिक पलायन मानसिक विश्राम को बढ़ावा देता है, तनाव के स्तर को कम करता है और समग्र कल्याण को बढ़ावा देता है। यह एक अनुस्मारक है कि जीवन की चुनौतियों के बीच, शांति और सुंदरता के क्षण भी हैं जिनका आनंद लिया जाना बाकी है।

अंत में, 'मधुशाला' एक साहित्यिक विश्राम स्थल के रूप में कार्य करती है, एक ऐसा स्थान जहां व्यक्ति क्षण भर के लिए अपनी दैनिक चिंताओं से दूर जा सकते हैं और हरिवंश राय बच्चन के कालजयी छंदों में विश्राम पा सकते हैं। सामान्य दुनिया से पलायन सिर्फ एक साहित्यिक भोग नहीं है, बल्कि मानसिक स्वास्थ्य को बनाए रखने और जीवन के बवंडर में संतुलन खोजने का एक महत्वपूर्ण पहलू है।

सांस्कृतिक संबंधः 'मधुशाला' कविता के दायरे से परे तक फैली हुई है; यह एक सांस्कृतिक कसौटी है जो भारत की समृद्ध विरासत के साथ व्यक्तिके जुड़ाव को गहरा करती है। हरिवंश राय बच्चन द्वारा कविता के भीतर भाषा और रूपक का उत्कृष्ट उपयोग न केवल पाठकों को भावनात्मक रूप से बांधे रखता है, बल्कि उनकी सांस्कृतिक जड़ों से उनके संबंधों को भी मजबूत करता है, जिससे अपनेपन और पहचान की गहरी भावना को बढ़ावा मिलता है।

'मधुशाला' के छंदों के भीतर, पाठकों को सांस्कृतिक रूपांकनों और संदर्भों का सामना करना पड़ता है जो भारत की विविध परंपराओं और इतिहास से मेल खाते हैं। मधुशाला, कविता में एक आवर्ती प्रतीक, भारतीय गांवों में इकट्ठा होने और कहानी कहने की सदियों पुरानी परंपरा की याद दिलाती है। शराब पीने का कार्य भी सांस्कृतिक अर्थ रखता है, जो भारतीय समाज में अनुष्ठानों और रीति-रिवाजों की भूमिका को दर्शाता है।

इसके अलावा, 'मधुशाला' पीढियों के बीच एक पुल का काम करती है। यह युवा पीढ़ी को अपने पूर्वजों के ज्ञान और कलात्मक अभिव्यक्तियों से जुड़ने, सांस्कृतिक मूल्यों और आख्यानों को संरक्षित करने और आगे बढ़ाने की अनुमति देता है। एक मजबूत सांस्कृतिक पहचान और निरंतरता की भावना बनाए रखने के लिए यह अंतरपीढ़ीगत संबंध आवश्यक है।

व्यापक संदर्भ में, यह सांस्कृतिक संबंध किसी व्यक्ति की स्वयं की समग्र भावना में योगदान देता है। यह इस विचार को पुष्ट करता है कि हमारी सांस्कृतिक विरासत हमारी पहचान का एक अभिन्न अंग है, जो जड़ता और उद्देश्य की भावना प्रदान करती है। बदले में, इसका मानसिक कल्याण पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है, क्योंकि जो व्यक्ति अपनी संस्कृति से जुड़ाव महसूस करते हैं, वे अक्सर पूर्णता और अपनेपन की भावना का अनुभव करते हैं।

निष्कर्ष : हरिवंश राय बच्चन की 'मधुशाला' एक चमकदार धागे के रूप में खड़ी है, जो दार्शनिक प्रतिबिंब, भावनात्मक अनुनाद, लचीलापन, आशावाद, पलायन और विश्राम और सांस्कृतिक संबंध के गहन आयामों

को एक साथ जोड़ती है। इस कालजयी कृति के छंदों के माध्यम से, हिंदी साहित्य मानसिक स्वास्थ्य के पोषण में अपनी परिवर्तनकारी शक्ति को प्रकट करता है।

'मधुशाला' कागज पर मात्र शब्दों से परे है; यह जीवन और मानव मानस की जटिलताओं को प्रतिबिंबित करने वाला दर्पण बन जाता है। यह एक दार्शनिक मार्गदर्शक है जो आत्मनिरीक्षण और आंतरिक संतुष्टि की खोज को प्रोत्साहित करता है, जो इसे चाहने वालों को मानसिक स्पष्टता प्रदान करता है। इसके छंदों में पाई जाने वाली भावनात्मक अनुगूंज सहानुभूति और भावनात्मक रेचन को बढ़ावा देती है, जिससे पाठक को सांत्वना और उपचार मिलता है। यह भावनाओं के सार्वभौमिक मानवीय अनुभव और साहित्य की चिकित्सीय क्षमता का प्रमाण है।

संक्षेप में, 'मधुशाला' किसी व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य पर हिंदी साहित्य के गहरे प्रभाव का उदाहरण है। यह मानव मानस को आकार देने और बढ़ाने के लिए शब्दों की स्थायी शक्ति का एक प्रमाण है। इसके छंदों के माध्यम से, पाठक आत्म-खोज, भावनात्मक संवर्धन और संस्कृति से गहरे संबंध की परिवर्तनकारी यात्रा पर निकलते हैं। 'मधुशाला' एक स्थायी अनुस्मारक के रूप में खड़ा है कि, साहित्य के क्षेत्र में, मानसिक कल्याण की खोज अपनी सबसे स्पष्ट अभिव्यक्ति पाती है।

सहायक अध्यापक एवं अध्यक्ष,
मनोविज्ञान विभाग, सीवीएम यूनिवर्सिटी,
वल्लभ विद्यानगर, आनंद, गुजरात
Email: mohsingarana@gmail.com

कविता

कैसी ये पहेली

केसरबेन राजपुरोहित

मिल जाए आयत की तरह चाहा जो कभी,
जैसे बीन बादल हो जाए बरसात कभी
अजीब सी है फिदरत ये,
पाने से ज्यादा खोने का डर है
ज़ज्बातों को शब्द दे नहीं पाते,
उम्मीदों के बीन जी नहीं पाते
आशा की नाव परवान पर,
निराशा की लहरें भी आजमाए पर
तूफानों से लड़ती-गिरती नाव किनारे पर,
तब जाके लगा क्यों था ये डर?
'कैसी ये पहेली...'
सुलझती है तो कभी उलझती है
अंजान बनकर कभी सवाल करती है
और उत्तर भी आप ही बनती है।

अतिथि व्याख्याता
हिंदी विभाग
कण्णूर विश्वविद्यालय

पुराण, इतिहास और आज के समय की गहरी पड़ताल करता उपन्यास

धर्मेंद्र प्रताप सिंह

'रिटर्न टिकट' युवा लेखक रवि कुमार सिंह का सद्यः प्रकाशित उम्दा और खूबसूरत उपन्यास है जो हिंद युग्म ब्लू प्रकाशन से प्रकाशित हुआ है। 'रिटर्न टिकट' का नाम सुनते ही हमारे जेहन में परदेश से घर लौटने की तस्वीर उभरती हैं, जहाँ हमारे अपने इंतजार कर रहे होते हैं- माँ-बाप, दोस्त, घर, बाग, नदी, खेत-खलियान, मवेशी और न जाने क्या-क्या? लेकिन जीवन भी तो यात्रा है और इस यात्रा का रिटर्न टिकट? यह उपन्यास उन तीन दोस्तों की कहानी है जो सफल जीवन की कामना करते हुए अपनी सांसारिक यात्रा शुरू करते हैं। सपने पूर्ण करने की अभिलाषा उनकी आँखों में दिखाई देती है और उसी के अनुरूप वे प्रयत्न भी करते हैं। चालीस की उम्र तक पहुँचते-पहुँचते अतुल एक प्रख्यात मीडिया विशेषज्ञ हो जाता है। उसका विवाह प्रीति के साथ होता है जो एक स्कूल टीचर है। अतुल और प्रीति को तीन वर्ष की बेटी है और विवाह के आठवें वर्ष दोनों ने तलाक की अर्जी दे रखी है। वह दिल्ली में नौकरी छोड़कर लखनउ वापस जाना चाहता है। प्रीति अतुल को छोड़कर शशांक के साथ अपने नए जीवन की शुरुआत करना चाहती है और बेटी अनन्या को प्ले स्कूल में डाल रखा है। विनीत उर्फ विन्नी साइकोल जी विषय का प्राइवेट यूनिवर्सिटी एसोसिएट प्रोफेसर हैं और उसकी दो पुस्तकें बेस्ट सेलर में रह चुकी हैं। लेकिन पिछले दो-तीन सालों से वह उत्साहीन हो गया है। ऐसा लगता है कि वह जीवन को ढो रहा है। अच्छा लेखक होने के बावजूद वह अपनी तीसरी किताब के लिए पिछले तीन साल से जूझ रहा है। पहले से कम बोलने लगा है और घर के कोने में पड़ा मोबाइल और गेम में व्यस्त रहता है। कभी कभार ऑनलाइन क्लास पढ़ा लेता है। बेटे अर्जुन की शिकायत है कि पापा उसके साथ खेलते नहीं। उसे अपनी ज़िंदगी नीरस सी लगने लगी है। निखिल उर्फ निक्की ब्रोकर बन जाता है। तीनों ही दुनिया की नजरों में नाम, पद, प्रसिद्धि और धन से परिपूर्ण हैं। युवा इन्हें सर्व सुख-सुविधा सम्पन्न और प्रेरणास्रोत मानता है लेकिन तीनों स्वयं अपने पारिवारिक, व्यवसायिक जीवन से असंतुष्ट हैं। तीनों दोस्त अपने ट्वेंटीज (20's) में जिस जीवन की कल्पना करते थे, जिसके लिए अपना सर्वस्व छोड़ते हैं, सफलता पाने के बावजूद अपना इच्छित वर्तमान नहीं पाते हैं। सभी पुराने दिनों के बारे में सोचते हुए अपनी यात्रा का वापसी चाहते हैं। बीस की उम्र में जिस लड़की से वे टूट कर प्यार करते थे, कुछ समय के बाद चालीस तक आते-आते उससे उबने लगते हैं। जिस व्यवसाय को खड़ा करने में जी तोड़ मेहनत करते हैं उससे भागने लगते हैं। उपन्यास की कहानी दिल्ली से लेकर बलिया तक फैली है जिसमें कोविड से उपजी मानसिक चुनौतियाँ हैं, गाँव से पलायन है और एकांत में जीने को अभिशप्त लोगों की कथा है। यह कहानी उन तमाम युवाओं से ताल्लुक रखती है जो सफलता और पैसे के बल पर जीवन में सब कुछ पाने की कामना करते हुए पद और शोहरत हासिल करते हैं लेकिन अंदर से बिलकुल खाली हैं। आखिर वह कमी कहाँ रह गयी जो इनके सुखद जीवन पर प्रश्नचिह्न खड़ा करती है? यही उपन्यास के कथ्य का मूल रहस्य है।

उपन्यासकार ने उपन्यास में लखनउ के ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का परिचय देने के साथ वहाँ के इतिहास का विशद मूल्यांकन किया है। लखनउ के ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को वाजिद अली शाह, उदा देवी और बेगम हजरत महल के माध्यम से पाठकों के सम्मुख न केवल रखा है अपितु समग्रता से उसका विश्लेषण भी देखने को मिलता है। बलिया के नामकरण के साथ उससे जुड़े पौराणिक विवरण हमें बलिया की मिट्टी के महत्व से रूबरू कराते हैं। बलिया अपने पौराणिक, ऐतिहासिक और साहित्यिक महत्व के लिए जाना जाता है। विवेच्य उपन्यास में पुराण, इतिहास और आज के साइबर युग के बीच जीने को अभिशप्त मानव जीवन की कथा को आधार बनाया गया है। समीक्ष्य उपन्यास को शरीर मानकर पूरी कथा को तीन भागों धड़, मस्तिष्क और हृदय में विभाजित किया जा सकता है जिसमें कथानायक का धड़ कभी दिल्ली, कभी लखनउ, कभी कानपुर तो कभी बलिया के उसके गाँव की तरफ भागता हुआ दिखाई देता है। लेकिन प्रश्न यह उठता है कि उसे भगा कौन रहा है? प्रेमिका, मित्र, पत्नी, बच्चे, गाँव, खेत

खलियान, पिताजी, आश्रम या बेनामी नदी। इसे पाठक पढ़कर स्वयं तय करें। मस्तिष्क की बात की जाए तो वह विश्वविद्यालय के सेमिनार हाल और गाँव के आश्रम में बाबा के साथ हुए संवादों के बीच देखने के लिए मिलेगा। भारतीय जीवन पद्धति में आश्रमों की स्थापना का उद्देश्य कठिन समय में जनसाधारण की भरण-पोषण और सुरक्षा का था जो कोविड के दौरान शहर से गाँव लौटे लोगों की शरणस्थली बनता है। यही आश्रम गाँव के बुजुर्गों को एकाकीपन से बचाते हैं। धड़ और मस्तिष्क के बीच हृदय ही सबसे ज्यादा अतृप्त और बेचैन है जो उपन्यास के पात्रों को किसी का बनकर नहीं रहने देता। उपन्यास की कविताएँ गंभीर विषय को सहजता से स्वीकार कर विमर्श के लिए प्रोत्साहित करती हैं। यह उपन्यास हमें सीख देता है कि जीवन जिम्मेदारी का नाम है और इसके पात्र उन जिम्मेदारियों से भागते हुए दिखाई देते हैं। यही कारण है कि वे अपने जीवन में स्थिर होकर कोई निर्णय नहीं ले पाते। यहाँ पर एक अनुभवी परामर्शदाता और मार्गदर्शक की जरूरत महसूस होती है जो कभी घर के बूढ़े बुजुर्ग होते थे। उपन्यास में बुजुर्गों के साथ-साथ ग्रामीण अंचल से शहरों की ओर हो रहे पलायन को मुद्दा बनाया गया है। उपरोक्त बिंदुओं के अंतर्गत ही उपन्यास को नहीं समेटा जा सकता। उपन्यास एक गंभीर चर्चा की मांग करता है जो उत्तर औपनिवेशिक समय की भागमभाग भरी जिंदगी में कोई भी अपने वर्तमान से संतुष्ट नहीं है। रचना की खासियत यह है कि इसके पात्र भविष्य के बारे में विचार न कर अपने अतीत को तलाशते हुए पुनः पाने का प्रयास करते हैं। लेकिन ऐसा करने वालों को यह भी सोचना चाहिए कि कहीं वह किसी और के उसी हक को मार तो नहीं रहे हैं जो एक पिता ने अपनी खुशी के लिए भीष्म पितामह के साथ में किया था। वह आने वाली पीढ़ी को क्या देंगे और क्या अपनी खुशी के लिए उनका भविष्य तबाह करना सही है? पूर्व दीप्त शैली में पात्रों का चरित्र, महाभारत के प्रसंग, इतिहास और सामयिक घटनाओं का मिश्रण उपन्यासकार की सृजनात्मक दृष्टि का परिचायक है। इन सभी के बीच कालिदास, केदारनाथ सिंह, फ्रायड आदि से संबन्धित प्रसंग लेखक के विचारों को व्यापकता प्रदान करते हैं।

उपन्यास पाठकों को एक साथ पुराण, इतिहास और आज के समय से रूबरू कराता है। नचिकेता और महाभारत के प्रसंग हमें पुरा आख्यानों की ओर ले जाते हैं जबकि भीतर गाँव मंदिरों के भग्नावशेष, लखनउ की बारादरी, विश्वविद्यालय कैंपस, वाजिद अली शाह, हजरत बेगम महल, उदा देवी के माध्यम से पाठक इतिहास से वार्तालाप करते हैं। उपन्यास का एक बड़ा हिस्सा कानपुर के कैंट और घाटमपुर का है। दिल्ली के मुखर्जी नगर के माध्यम से आज के युवाओं की सीधे-सीधे तस्वीर उभरती है जहाँ उनके जीवन की भागमभाग, कैरियर और पारिवारिक जीवन का तनाव देखने को मिलता है। वह युवा जो यू पी एस सी की तैयारी करता है, मुखर्जी नगर उसके सपनों में बसता है। नीलोत्पल मृणाल अपने उपन्यास 'डार्क हॉर्स' का नायकत्व मुखर्जी नगर को देते हैं जो न जाने कितनों के सपनों को साकार करता है। इन सभी के बीच फ्रायड, एडलर, युंग, नचिकेता, युधिष्ठिर, वाजिद अली शाह, बेगम हजरत महल, उदा देवी आदि सभी संवाद का माध्यम बनते हैं। रचनाकार ने आज के समय के महत्वपूर्ण मुद्दों को उपन्यास में जगह दी है। चाहे वह वैवाहिक जीवन के उपरांत तलाक की समस्या हो, युवाओं द्वारा अकारण आत्महत्या करने की समस्या, बुजुर्गों द्वारा शहरों की ओर पलायन और उनका अकेलापन, तलाक के बाद बच्चों की मानसिक अवस्था आज न जाने कितने मुद्दों को उपन्यास के कथ्य में जगह देने का प्रयास किया है।

उपन्यासकार ने भाषा, शैली और भाव तत्त्व में सामंजस्य स्थापित करने का सार्थक प्रयास किया है जिसमें उसकी स्वलिखित कवितायें उदाहरण के रूप में ली जा सकती हैं। उपन्यास का कथ्य समसामयिक है जो पाठकों के लिए सहज ही ग्राह्य है। शहरों में रोजमर्रा के व्यवहार में प्रयुक्तहोने वाली भाषा का प्रयोग कथ्य को जीवंतता प्रदान करता है। उपन्यास के पात्र अकेलेपन, खंडित होते रिश्तों, अतीत की स्मृतियों, इतिहास, पुराख्यानों, वर्तमान आदि से संवाद करते हुए नज़र आते हैं जो कृतिकार की भाषाई सफलता है। हिंदी के साथ अंग्रेजी के बहुतायत शब्द हैं जो दिल्ली, कानपुर और लखनउ जैसे महानगरों का पढ़ा-लिखा मध्यवर्ग प्रयोग करता है। बीच-बीच में संस्कृत की सूक्तियों के माध्यम से जीवन के गूढ़ रहस्यों को रेखांकित करने का प्रयास रचनाकार ने किया है। इसके साथ ही गाँव अंचल के प्रसंगों में देशज भाषा का रंग भी विद्यमान है।

सहायक आचार्य , हिन्दी विभाग
केरल केन्द्रीय विश्वविद्यालय, कासरगोड
ईमेल:dpsingh777@gmail.com
मोबाइल- 945346741

'उपन्यासकार मेहरून्निसा परवेज़' एक झलक

डॉ. मिनी.पी.

साठोत्तर कथा जगत में अनेक महिला कथाकारों का उदय हुआ है, जिन्होंने देश में व्याप्त मूल्य संक्रमण, निम्न वर्ग की शोषित सामाजिक व्यवस्था और निम्न मध्य वर्गीय नारियों की दर्द भरी वाणी एवं पुकार को पहचान लिया और अपने कथा साहित्य द्वारा उन परिस्थितियों को बदलना भी चाहा।सामाजिक विसंगतियों, कुरीतियों और आधुनिकता के मोहपाश में पडे मानव की रुग्ण मानसिकताओं का जीवन्त चित्रण इनके कथा साहित्य में मिलता है।

साठोत्तरी महिला कथाकारों में मुस्लिम मध्य वर्गीय चेतना की कथा लेखिका श्रीमती मेहरून्निसा परवेज़ का नाम अग्रगण्य हैं। वे आदर्शवाद से मुँह मोड़ लेती है और यथार्थ की पहचान बनाने के लिए संवेदनाओं के ठोस और नये आयाम भी प्रस्तुत करती हैं। रोज़मर्रा की घटनाओं , घर - परिवार की विडंबनाओं व नारी जीवन की पीडा के अलावा उन्होंने अपने समय की विसंगतियों और वस्तु का पर्याप्त विस्तार भी किया है।इससे हम यह कह सकते हैं कि मेहरून्निसा परवेज़ जीवन के सच्चाई के प्रति जागरूक हैं।

मेहरून्निसा परवेज़ के कई कहानी संग्रह और उपन्यास अब तक प्रकाशित हो चुके हैं। आदम और हव्वा,गलत पुरुष, टहनियों पर धूप , अंतिम चढाई रिश्ते ,सोने का बेसर , अयोध्या से वापसी , ढहता कुतुब मीनार, लाल गुलाब , मेरी बस्तर की कहानियाँ आदि उनके कहानी संग्रह हैं। आँखों की दहलीज़, उसका घर, कोरजा, अकेला पलाश, और पासंग उनके उपन्यास हैं। आपकी कहानियों और उपन्यासों में जीवन मूल्यों की व्याख्या, नारी जीवन की शिथिलता को दर्शाया गया है।

आँखों की दहलीज़ उपन्यास में प्रेम, संघर्ष और बलिदान का त्रिकोणात्मक संघर्ष हैं । पति शमीम के साथ तालिया का जीवन अत्यंत सुखद नहीं था। तालिया के कानों में डाक्टरों की बात गूँज उठती है। "अफसोस है मि. शामीम, आपको बच्चे का सुख नहीं मिल सकता, उम्मीद मेरे ख्याल से बेकार है।"[1] मेहरून्निसा परवेज ने इस उपन्यास में नारी मन की ऐसी एक समस्या को लिया है, जो शाश्वत है। सभ्यता के आधुनिक विकास में भी नारी का चिरंतन संतति प्रेम इस कथा का केंद्र है ।

उसका घर मेहरून्निसा परवेज़ का दूसरा उपन्यास , जो वर्तमान खोखली पारिवारिक व्यवस्था तथा भ्रष्ट समाज से जुडी एक सुखद सच्चाई है। इसकी नायिका अपनी संघर्षशील ज़िन्दगी से लहुलुहान करती हुई उचित रास्ते की तलाशा में भटकती रहती है। लेखिका नायिका की अनुभूति का साक्षात्कार अपने पाठकों से करवाना चाहती हैं ।

बस्तर में रहकर मेहरून्निसा परवेज़ ने जो अनुभव किया उसका प्रतिफलन ' कोरजा' उपन्यास में है। रन्नो की बेहोश हालत देखकर रब्बो आपा नसीमा से कहती है कि - "नस्सा इसे दिन चढ़े हैं, दोनों

एकदम खुलकर साथ-साथ रहते थे।मेरी ही ज़िद पर शादी जल्दी हो रही है। वरना इन दोनों को कोई चिंता नहीं था। नया ज़माना आ गया है।"[2]

'अकेला पलाश' उनका चौथा उपन्यास है। अनमेल विवाह , दांपत्य संबन्धों की टूटन और नारी विषयक समस्याओं का चित्रण इसमें हैं। तहमीना केंद्र पात्र है। जमशेद से विवाह होने पर तहमीना शारीरिक और मानसिक सुख से अतृप्त एवं वंचित होती है इस अतृप्ति के स्वर के प्रभाव वह अपने पति पर तूफानी हवा जैसा प्रहार देती है -"देखो, तुम, मेरे शरीर के साथ खिलवाड करते हो, मेंरे शरीर की इच्छाओं को जगा देते हो और उन इच्छाओं की माँग को तुम पूरा नहीं कर सकते तब तुम मेरे पास आते क्यों हो?"[3]

अपने स्वर्गीय बेटे समरप्रसाद की स्मृति में मेहसन्निसा परवेज जी ने आदर्श एवं संस्कारगत भारतीय नारी के रूप में गोपीलाल की पत्नी सुहासिनी का चित्रण 'समरांगण' उपन्यास में किया है। 'पासंग' उपन्यास के बारे में मेहरुन्निसा परवेज़ कहती है कि 'बेटी सिमाला को और उसकी नयी पीढ़ी को अपना नया उपन्यास 'पासंग' मैं सौंपती हूँ। 'पासंग' उपन्यास अपनी युवा पीढ़ी को सौंपना चाहती हूँ। "औरत की व्यथा, दुख हताशा तथा उसके संघर्ष का मैंने इस कथा में लिखा है।"[4]

इसमें बानो आपा अपने में पाप की गठरी लेती है। अपने बच्चे को देखने की आतुरता और एक माँ की तरल वेदना के चीत्कार के रूप में मेहरुन्निसा जी ने इस उपन्यास में अंकित किया है - "मुझे बच्चे को दिखाया तक नहीं, आखिर कहाँ ले गये बच्चे को? बानो आपा दहाड़ी"[5] इसमें मेहरुन्निसा परवेज़ जी ने माँ के दर्जे को पवित्र स्थान दिया है ।

मेहरुन्निसा परवेज़ की नारी पात्र बहुमुखी हैं। लेकिन अपने उपन्यासों में समाज के बहुस्तरीय चित्रों के साथ नारी के अंतरंग रिश्तों और सूक्ष्म भावों को अपनी सादगीयुक्त भाषा से शिल्पहीन कला के सहारे व्यक्त करती हैं। उन्होंने बदलती नारी की प्रतिमाएँ दिखाकर अपनी नारी पात्रों को कालजयी एवं अनश्वर बना दिया है।

संदर्भ सूचि

1. मेहरुन्निसा परवेज़- आँखों की दहलीज़ पृ.9
2. मेहरुन्निसा परवेज़ -कोरजा पृ.44
3 मेहरुन्निसा परवेज़- अकेला पलाश - पृ83
4. मेहरुन्निसा परवेज़ - पासंग, मुखपृष्ठ से
5. मेहरुन्निसा परवेज़ - पासंग 175

डॉ. मिनी पी (एच एस टी हिंदी)
जी.बी.एच.एस. कायंकुलम

महिला मुक्ति की चेतना : हिंदी-हाइकु कविता के संदर्भ में

सजना.वी.ए.

काव्य विधा में हाइकु का स्थान सराहनीय है। विश्व की सबसे छोटी कविता के रूप में हाइकु जाने जाती है - हाइकु सत्रह अक्षरवाली कविता हैं। इसमें केवल तीन पंक्तियां ही होती हैं। हाइकु, व्यस्त जीवन में मनुष्य को तुरंत से ज्ञान प्राप्त करने के लिए एक उपाय एवं सहायक है। हाइकु का जन्म जापान से माना जाता है। 'रवींद्रनाथ टैगोर' ने जब जापान में सैर करने गये,तब उन्हें हाइकु के बारे में पता चला और आप प्रभावित हुए और अपनी पुस्तक 'जापानी यात्री' (1919) में हाइकु के बारे में जिक्र किया, और उन्होंने हाइकु को बंगला भाषा में अनुवाद करके रखा। हिंदी में हाइकु का सर्वप्रथम परिचय 'अज्ञेय' द्वारा लिखित 'अरी ओ करुणा प्रभामय' (1959)से हुआ।

आकार में छोटी सी कविता होने पर भी बड़े-बड़े विषयों को बहुत अच्छे ढंग से हाइकु प्रस्तुत करती है। सामाजिक यथार्थ से लेकर राजनीति, दंगा, आध्यात्मिकता आदि हर तरह की समस्याओं को हाइकु छोटी सी पंक्तियों के जरिए हमारे सामने प्रस्तुत करता है। नारी जाति पर होने वाले शोषण और अक्रमणो की अभिव्यक्तिकरके, हाइकुकार ने महिला मुक्तिकी चेतना जगाने का प्रयास किया है। सदियों से पीड़ित शोषित नारी वर्ग का स्वर हाइकु पंक्तियों में गुँज रहा है। रूप और आकार में छोटे होने कारण हाइकु के विषय फलक में कोई कमी नही है। समाज और संस्कृतिक अन्याय के प्रति लड़ने की ताकत हाइकुकार पाठकों को देते हैं। हाइकु के बारे में डॉ. धनंजय चौहाण का कहना हैं- "हाइकु दैनिक जीवन से अनुभूत सत्य की अभिव्यक्तिहै वह विराट सत्य की ओर इंगित करने वाली सांकेतिक अभिव्यंजना है।"[1]

आज नारी एक शोषित वर्ग है। नारी की व्यथा को कवि अपनी कविताओं के जरिए हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं। सिर्फ नारी की वेदना मात्र नहीं नारी उत्थान के लिए भी हाइकुकार प्रयास करते हैं। इससे नारी पर होने वाले अन्याय और दुष्ट प्रवृत्तियों को खत्म करने के लिए प्रयास कवि करते हैं। शोषित -पीड़ित वर्ग का चित्रण भी पाठक तक पहुँचाने के लिए हाइकु के जरिए हाइकुकार सफल भी हुए है। इसका उदाहरण हैं : "बेटी का प्यार/ आंगन में झरता/ हर सिंगार।"[2]

यहाँ नारी का बेटी रूपी चित्रण किया गया है। कवि यहाँ एक बेटी के प्यार को आंगन में झरता हर सिंगार के समान कहता है। आंगन में चढ़ते हुए हर सिंगार की सुन्दरता जितनी बड़ी है,उसी तरह हर एक घर में एक बेटी है तो उस घर की शोभा भी बढ़ जाती है। हर घर में एक बेटी या नारी होने की आवश्यकता को ही बताया गया है। नारी के महत्व और प्यार के सुंदर चित्रण यहाँ हमें दिखने को मिलता है।

"घर है खाली/जिसकी करती थी/माँ रखवाली।"[3] - (मिथिलेश दीक्षित)

यहाँ हाइकुकार माँ के महत्व को सामने रखते हैं। 'पुष्पा जमुआर' के अनुसार- " डॉ. दीक्षीत ने स्वयं नारी होने के कारण नारी हृदय को पूरी गहराई से समझा है।यही कारण है कि इनकी अभिव्यक्तिमें सच्चाई के साथ गहराई भी है। वह गहराई किसी भी पाठक के हृदय को स्पर्श करती है।"[4] प्रस्तुत पंक्तियाँ इसका प्रमाण हैं। माँ के बिना घर सूना हो जाता है। घर और घरवालों की देखभाल करने वाली माँ का महत्व उनके जाने के बाद हम पहचानते हैं। घर की रखवाली के रूप में माँ हर काम करती रहती है और बच्चों से बिना शर्त प्रेम भी करती है। भगवान की सुंदर सृष्टि नारी का अद्भुत रूप है माँ। मातृत्व के महत्व को यहाँ पाठक को समझाने की कोशिश की गयी है। "सुबह हुई/ बतियाने लगे हैं /रसोई घर।"[5] (डॉ. शैल रस्तोगी)

डॉ. शैला रस्तोगी जी इस हाइकु द्वारा कहते है कि सुबह से रसोई घर आपस में बातें करने लगता हैं। यह बात एक प्रतीक है कि हर घर में नारी ही सुबह उठकर रसोई घर में जाकर सारे काम करती हैं। उनकी बातचीत सिर्फ रसोई घर के बर्तनों से, स्टोव से या आग से ही है। सदा वह अपने

रसोई घर से बातचीत करके अपने सारे हुनर को नष्ट कर देती हैं। पत्नी हो या माँ हो या बेटी या दादी हर नारी रसोई घर के अंदर बंद है। और उन्हें दिन - रात वहाँ बिताना पड़ता है। नारी को उस कैद से बाहर आकर, समाज में अपना सामर्थ्य और क्षमता को दिखाने का मौका आज अनेक हैं।

"नारी शरीर/भेड़ियों की भूख से/हुए बेहाल।"[6]

नारी शोषण का उदाहरण यहाँ 'काम्बोज' जी देते है कि आज की उपभोक्ता संस्कृति में सब कुछ बिकाउ चीज है। इसलिए नारी शरीर को भी लोग चीज की तरह मानते है। नारी शरीर को हड़पने की इच्छा में बाज़ नज़रें चारों और हैं। उससे बचने के लिए नारी के पास कोई उपाय नहीं है। नारी को भोग्य वस्तु मानने वाले समाज में जीना मुश्किल बन गाया है। नारी की सुरक्षा पर हाइकुकार संदेह करते हैं।

"बेटी का जन्म/जीवन पराजित/बिलखती माँ।"[7]

बेटियाँ तो ईश्वर का वरदान हैं। इस दुनिया में लड़कियों का सहयोग हम भूल जाते हैं। भारत में अधिकतर लोग बेटी के जन्म से रोते हैं। यह मानसिकता भयानक भी है।आजकल समाज में लड़कियाँ दूसरों के कारण शारीरिक या मानसिक रूप से पीड़ित होती है या बलात्कार की शिकार होती है या फिर उन्हें अच्छी शिक्षा न मिलती है और सभी प्रकार का अन्याय उसके प्रति होता है तो हर माँ बेटी पैदा करने से डरती है। क्योंकि माँ अच्छी तरह जानती हैं कि इस समाज में बेटियाँ सुरक्षित नहीं हैं। समाजिक इस तीखी नजरों से बेटियों को बचाने के लिए माँ को सदा आँखें खोलकर रहना पड़ता है।

"आंसू न होते/नारी की आंखे होती हैं/बंजर खेत।"[8]

नारी की पीड़ा की ओर समाज अंधा है, उस व्यवस्था की आँख खोलने का प्रयास हाइकुकार ने किया है।

"कब पवित्र?/नारी के विषय में/दृष्टि विचित्र।"[9] (डॉ. कविता भट्ट)

नारी के जीवन का परम लक्ष्य विवाह नही है। उसे अपने पैरों पर खड़े होने की शक्ति प्राप्त करना है। लेकिन पुरुष प्रधान समाज में लोगों की सोच यह है कि नारी जीवन सिर्फ पति और परिवार की देखभाल के लिए बना हुआ है। इस तरह की रूढ़िग्रस्त विचारों पर हाइकुकार अपना विरोध अभिव्यक्तहै। –

"रहेगी सदा/झांसीवाली रानी की/अमर कथा।"[10]

यहाँ अनामिका शाक्य यह बताती है कि झाँसी की रानी की कथा हम सदियों से सुन रहे हैं। हमेशा सिर्फ राजा ही युद्ध करते हैं। इससे अलग होकर झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई ने अपने कर्तव्यों के साथ अंग्रेजों से भारत कि आजादी के लिए लड़ाई की। आज भी हम किसी होशियार जवान लड़कियों को देखते समय उसको झाँसी रानी पुकारते हैं। लेकिन हम अपने घर की वीरांगनाओं को आगे बढ़ाने के लिए तैयार नहीं है। क्योंकि हम हमेशा यह समझते हैं कि नारी जीवन बाहर नहीं, चार दीवारों में होना चाहिए। अपनी राय प्रकट करना या पुरुषों से आगे बढ़ना या किसी उच्च स्थान प्राप्त करना यह सब कुछ उनको पसंद नहीं है। यहाँ कवयित्री बताती है कि रानी की कथा यहाँ केवल अमर कथा ही है क्योंकि हमारा मन और सोच अभी भी पुराने जमाने के ही है। हम सिर्फ रानी की कथा को हमेशा बड़े ढंग से बताते हैं लेकिन हमारी बेटियों को झाँसी रानी की तरह बनने नहीं देते। नारी की उपासना करके मनुष्यों ने असली नारी के साथ बुरा बर्ताव करते है और नारी को सिर्फ मंदिर में सम्मान देकर असली जीवन में हाशिएकृत करते है। –

"जब थी बच्ची/रोक आशाओं पर/अब स्त्री बनी।"[11]

यहाँ डॉ.रंजीत रविशैलम यह बताते हैं कि नारी की ज़िन्दगी में प्रतिबंधों की शुरुआत बचपन से होती है। उनकी आशाओं और लक्ष्यों पर रोक लगाई जाती है। इस तरह अनेक नियम का अनुसरण करके वह स्त्री बन जाती है। सारी रोक सिर्फ नारी को है, पुरुष को नही है। समाज स्त्री के सपनों को जंजीरो से कैद करता है। आधुनिक जमाने में लिंग असमानता पर बहुत चर्चा हो रही है। इस तरह के शोषित नारी जीवन का यथार्थ चित्रण इस हाइकु में नज़र आती है। –

"हे बंद नारी/आजीवन, स्वतंत्र/ मृत्यु के बाद।"[12]

कवि नारियों की अस्वतंत्रता को समझकर आह्वान करते हैं कि नारी आजीवन बंद रहनेवाली हो जाती है।

आजीवन अपने चार दीवारों में बंद होकर अंत में नारी मर जाती है।सदियों से अपनी चारो ओर अनेक नारियों को इस तरह तड़पकर जीकर मरते हुए देखा है। अपने स्वत्व को पहचाने बिना वह पूरा जीवन गुलाम बनकर जीती है और मरती है। इसलिए कवि नारियों को यह आह्वान करते हैं कि बाहर आ जाओ और अपना काम करो और अपने अस्तित्व को वापस ले जाओ। नारी या किसी का जीवन अंदर बैठकर सोते या रोते नहीं होना चाहिए। नारी के पास इतनी शक्ति है कि वह समाज को बदलने की ताकत भी रखती है। इसलिए कवि कहते हैं कि अन्दर बैठकर दुनिया से लड़ने से कोई फायदा नहीं है।

'रचना श्रीवास्तव जी की हाइकु देखिए :- "कोई न होगा/ मारोगे जो बेटियाँ/सृष्टि रुकेगी।"[13]

इस दुनिया में सृष्टि करने की शक्तिनारी में है। बहुत वेदना सहकर एक बेटा और बेटी को वह जन्म देती है। इससे हमारी दुनिया आगे बढ़ती है। अपने जीवन के दस महीनों तक अपने रक्त और मांस को देकर वह एक बच्चे का पालन करती हैं और बच्चे के जन्म के बाद भी अपनी मृत्यु तक उसी बच्चे के लिए वह जीती हैं। इसलिए नारी को हमें सम्मान करना चाहिए। अगर नारी ने सृष्टि करना बंद किया या पैदा करना बंद किया तो यह दुनिया खत्म हो जाएगी।

"आचार दीक्षा/केवल जानकी को/अग्नि -परीक्षा!।"[14] (डॉ. सरिता शर्मा)

कवयित्री पूछती हैं कि अग्नि परीक्षा किसी पुरुष को क्यों नहीं है। यहां कवि हमको पौराणिक कथा की ओर ले जाते हैं और कहते हैं कि भारत के पवित्र नारियों में राधा, सीता और कुंती देवी आदि बहुत प्रमुख हैं। वह तीनों बहुत पवित्र माने जाते हैं। रामायण में सीता को रावण के हड़पने से अग्नि परीक्षा देनी पडती हैं तो दूसरी ओर महाभारत या किसी पौराणिक कथा में किसी पुरुष को कभी भी अग्नि परीक्षा देते हुए नहीं दिखाया हैं। अर्जुन ने सुभद्रा से विवाह किया और भीम ने हिडुम्बी से विवाह किया लेकिन उस समय में भी वे अपनी पवित्रता अपनी पत्नी के सामने प्रकट करने के लिए अग्नि परीक्षा या किसी तरह की परीक्षा देने के लिए तैयार नहीं थे। लेकिन पुराने ज़माने से सिर्फ नारी को ही अपनी पवित्रता दूसरों के सामने दिखाना पड़ती है। पवित्रता किसी लिंग की बात नहीं है। पवित्रता पुरुष, नारी, बच्चे और वृद्ध सभी में हर जीव में होनी चाहिए। यहाँ सीता को अपनी शुद्धि एवं पवित्रता को दूसरों के सामने दिखाना पड़ा। यहां सीता अग्नि परीक्षा के बाद जंगल में जाकर अपने बेटों के पालन करके जीवन जीती है और आखिर में वह अपने पति के साथ जाने के लिए भी विमुखता प्रकट करती है। और अपने आप ही धरती में विलीन हो जाती हैं। क्योंकि सीता की माँ धरती हैं। यहाँ रामायण से भी यह समझ सकते हैं कि माँ की गोद से बड़ा कोई सुरक्षित स्थान नहीं हैं। डॉ पशुपतिनाथ उपाध्याय का कहना हैं कि यह तथ्य भी स्वीकार किया गया है कि नारी मणि है और फणि भी। जिसमें सीता जैसी तपश्चर्या और सावित्री जैसी साधना भी निहित हैं। एक ओर अर्धांगिनी वामांगिनी के रूप में नारी स्थापित हो चुकी है। वहीं दूसरी ओर वह पुरुष प्रधान समाज में शोषित पीड़ित भी हुई है। फिर भी नारी जागरण है, नारी मुक्तिहै, नारी दुर्गा है।"[15] "है यदि मर्द/ दहेज मत मांग/ भर दे मांग।"[16]

दहेज़ के कारण घर में पीड़ा सहने वाली नारी भी हमारे बीच में है। दहेज़ कम होने की वजह से नारी अपने ससुराल में घरेलू हिंसा की शिकार बन जाती है। लेकिन हाइकुकार इन अत्याचारों के खिलाफ आवाज़ उठाने की कोशिश करते हैं। युवा पीढ़ी को दहेज़ रूपी सामाजिक कीड़ा को भगाने का आह्वान हाइकुकार देते है – "एक महिला/नीव हैं समाज की/धुरी घर की।"[17] (डॉ. सुषमा सिंह)

महिला समाज की नींव है और रीढ़ है। महिला घर की धुरी भी है। वह घर का सारा काम करती है, बच्चों का पालन पोषण करती है। हर एक इंसान, समाज की एक इकाई है। व्यक्ति का चरित्र और जीवन दर्शन का प्रभाव समाज में भी होता है। इसलिए हर अच्छे नागरिकों का निर्माण घर से ही शुरू होता है। बच्चों का पालन करके भविष्य में एक सशक्त पीढ़ी का निर्माण सिर्फ महिला ही करती है। इसके साथ- साथ घर के बाहर भी जाकर काम करके अपनी करियर विकसित करके नारी दूसरों के लिए प्रेरणा स्रोत बनती है। इसलिए समाज और घर की नींव नारी है।

"नारी है नारी/गुलाम नहीं वह/है चिंगारी।"[18] (रमा रश्मि)

"बेटियां आज/ उड़ाकर विमान /बढ़ाती है मान।"[19] (यतीश चदुर्वेदी राज)

इन दोनो हाइकुओं के जरिए नारी शक्तिका चित्रण हाइकुकार ने किया है।नारी किसी का गुलाम बनकर जीने वाली नही है। वह आग की तरह जलनेवाली है।नारी के अस्तित्व की अवहेलना करने वाले यह समाज आज नारी के विकास की ओर बढ़ रहा है। नारी अब शोषित नहीं है, अपने हुनर को पहचानकर उसने अपने विकास एवं स्वतंत्रता को पा लिया है। रोती बिलखती कर जीवन बिताने वाली नारी की जगह अब हर क्षेत्र में कामयाबी को दिखाने वाली नारी है। महिला मुक्तिका चित्रण मात्र नहीं, बल्कि अपने पैरों में खड़े होकर शान और मान के बनाये रखनेवाली नारी की अभिव्यक्तिभी हिंदी हाइकु में है।

कुल मिलाकर यह कह सकते हैं कि महिला मुक्तिके लिए हाइकूकारों ने अपनी कलम चलाई है । नारी की पहचान और शक्तिहर क्षेत्र में प्रकट है। नारी को घर के चार दीवारों को तोड़कर बाहर आना चाहिए और दुनिया के असीमित अवसरो को पहचानना चाहिए। शिक्षा प्राप्त करना चाहिए और अपने प्रति होने वाले अत्याचार और कुरीतियों के विरुद्ध आवाज उठानी चाहिए। इन सभी से ही नारी जीवन का महत्व दुनिया में प्रकट हो सकता है। नारी केवल देवी के रूप में ही नहीं, वह अब भारत के राष्ट्रपति के रूप में भी है। दुनिया के हर कोने में नारी अपना हुनर और क्षमता को दिखा रही है और आगे बढ़ रही है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ धनंजय चौहान-आईना- शुभम पब्लिकेशन कानपुर 2019 - पृ 3(अपनी बात)
2. सं आनंद सुमन सिंह-सरस्वती सुमन(हाइकु विशेषांक) - पृ 46
3. डॉ मिथिलेश दीक्षित-हिन्दी हाइकु काव्य स्वरूप एवं विकास-वी पी पब्लिशर्स एंड डिसटीब्यूटर्स कानपुर 2015, पृ 146
4. डॉ. अमरेन्द्र - डॉ.मिथिलेश दीक्षित का हाइकु साहित्य - दिशा एंव दृष्टि 2014 -पृ 65
5. डॉ मिथिलेश दीक्षित - सीपीयों में बंद सागर - उत्कर्ष पब्लिशर्स एंड डिसटीब्यूटर्स कानपुर 2016- पृ 117
6. रामश्वर काम्बोज हिमांशु - माटी की नाव - अयन प्रकशन 2013 -पृ 110
7. रचना श्रीवास्तव - भोर की मुस्कान - अयन प्रकाशन नई दिल्ली 2014 - पृ 68
8. कृष्णा वर्मा - अंबर बांचे पाती - अयन प्रकाशन नई दिल्ली 2014 - पृ 76
9. सं श्याम त्रिपाठी हिंदी चेतना हाइकु विशेषांक जनवरी मार्च 2020 पृ 34
10. डॉ मिथिलेश दीक्षित - सीपीयों में बंद सागर - उत्कर्ष पब्लिशर्स एंड डिसटीब्यूटर्स कानपुर 2016 - पृ 23
11. डॉ रंजीत रविशैलम् -हाइकु फेबियन बुक्स 2016 -पृ 88
12. डॉ धनंजय चौहान - आईना - शुभम पब्लिकेशन कानपुर 2019 - पृ 55
13. रचना श्रीवास्तव - भोर की मुस्कान - अयन प्रकाशन नई दिल्ली 2014 - पृ 64
14. सं कामनेश भट्ट कमल - हाइकु 2009- प्रकाशन संस्थान नई दिल्ली 2010 - पृ 110
15. डॉ पशुपतिनाथ उपाध्याय आपताकालोत्तर हिंदी कविता 2008 -पृ 209
16. मीनू खरे- खोयी कविताओं के पत्ते उत्कर्ष, मीनु खरे,पब्लिकेशन एंड डिसटीब्यूटर्स, कानपुर - पृ 65
17. डॉ मिथिलेश दीक्षित - सीपीयों में बंद सागर - उत्कर्ष पब्लिशर्स एंड डिसटीब्यूटर्स कानपुर 2016 - पृ 133
18. डॉ मिथिलेश दीक्षित - हिन्दी हाइकु काव्य स्वरूप एवं विकास - वी पी पब्लिशर्स एंड डिसट्रिब्यूटर्स कानपुर 2015 - पृ 150
19. डॉ मिथिलेश दीक्षित - हिन्दी हाइकु काव्य स्वरूप एवं विकास - वी पी पब्लिशर्स एंड डिसटीब्यूटर्स कानपुर 2015 पृ 148

शोध छात्र , हिंदी विभाग
महाराजास कॉलेज, एर्णाकुलम
(संबद्ध-महात्मागाँधी वि.वि.,कोट्टयम)

(म.गॉ.विश्वविद्यालय से वित्त पोषण)
VO No 4446/Ac/A6/2022 mgu dated 28.04.2022

अरुण कमल के काव्य में स्त्री

श्रुतिकीर्ति अग्निहोत्री

शोध सार- वैश्वीकरण के दौर में जहाँ मनुष्य का जीवन संभावनाओं और चुनौतियों से भरा हुआ है ऐसे में आधा आबादी को रेखांकित करती स्त्रियों की स्थिति में एक व्यापक बदलाव आया है। वह अपने स्वातंत्र्य की ओर निरन्तर अग्रसर है। समकालीन हिन्दी कविता जो सन् सत्तर के बाद उभरी, उसके अनेक कवियों द्वारा अपने रचना कर्म में स्त्रियों की स्थिति का आकलन पूर्ववर्ती कवियों की तुलना में पूर्णतः भिन्न है। समकालीन कविताओं में वर्णित स्त्री लेखन का स्वर थोड़ा अलग है। इसमें स्त्री की पीड़ित छवि के बजाय उसके सबल व सक्षम स्वरूप का प्रचार किया गया। स्त्री केवल देह के सौन्दर्य का प्रतिबिम्ब मात्र नहीं बल्कि श्रम सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति परिलक्षित होती है।

बीज शब्द - समकालीनता, स्त्री संवेदना, आत्मानुभूति, मुक्ति अस्मिता, आत्मसंघर्ष

प्रस्तावना - शोषितों और उत्पीड़ितों के प्रति हमदर्दी प्रकट समकालीन कविता की प्रवृत्तिगत विशेषता रही है। समकालीन हिन्दी कविता के सशक्तहस्ताक्षर अरुण कमल की कविता में इसका बखूबी वर्णन किया गया है। स्त्रियों के प्रति हमदर्दी प्रकट करना कवि का लक्ष्य नहीं रहा बल्कि उन्होंने नारी व्यथा, उसकी मूक दशा, विवशता एवं जीवन की तमाम परिस्थितियों एवं समस्याओं से जूझती संघर्षरत नारी को एक अलग दृष्टिकोण के साथ प्रस्तुत किया है। स्त्री केवल सहनशील, देवी प्रतिस्था नहीं है वरन् वह सबला बन अपने अधिकारों के प्रति सजग भी है। उन्होंने अपनी कविताओं के माध्यम से स्त्री मन की वास्तविक अनुभूति को व्यक्तकिया विशेषकर वह ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं की दशा को बारीकी से रेखांकित करते हुए चलते हैं।

पुरुष प्रधान समाज में ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं की स्थिति अभी भी दयनीय है, वे अपने अधिकारों के प्रति इतनी सजग नहीं हैं। अरुण कमल स्त्रियों के प्रति अपनी मार्मिक अनुभूति को व्यक्तकरते हुए अपने काव्य चिंतन को विस्तार देते हैं तथा उसे इस प्रकार व्याख्यायित करते हैं जिससे पाठक के सामने यथार्थ बिम्ब उभरकर आता है। नारी के प्रति उनकी अवधारणा का मूल्यांकन उनकी कविताओं को भीतरी गहराई से समझकर ही सम्भव है।

अपनी केवल धार संग्रह की कविता धरती और भार में कवि ने गर्भवती नारी की दशा को चित्रित किया है। उसके प्रति सहानुभूति व्यक्तकरते कवि को आशंका है कि ऊबड़-खाबड़ गली से गुजरकर उसका गर्भ डोल जाएगा तथा गर्भ में पल रहे बच्चे को आहत होगा। गाँवों में आज भी जल समस्या का सामना विशेषकर महिलाओं को करना पड़ रहा है। वह घंटों लाइन में लगकर सड़कों पर लगे नल से पानी भरने को विवश है। ऐसे में कवि का आग्रह घर के आंगन में ही नल लगाने की व्यवस्था से सम्बन्धित है। नारी की इसी विवशता का मार्मिक वर्णन इस प्रकार है-

भौजी, डोल हाथ में टाँगे /मत जाओ नल पर पानी भरने/
तुम्हारा डोलता है पेट/ झूलता है अन्दर बँधा हुआ बच्चा/
गली बहुत रुखड़ी है/गड़े हैं कंकड़-पत्थर/दोनों हाथों से
लटके हुए डोल/अब और तुम्हें खींचेंगे धरती पर/झोर देंगे
देह की नसें/डकस-नीचे डोलेगा पेट/और थक जाएगा
बउआ"[1]

अरुण कमल की कविता नारी जीवन के तमाम प्रश्नों से गुजरते हुए नारी की परिस्थितियों को वाणी देती है। इसी संग्रह की अन्य कविता ओह बेचारी कुबड़ी बुढ़िया में कवि ने अपने मकान के पास रहने वाली कुबड़ी बुढ़िया की दारुण कथा का वर्णन किया। अपंग बुढ़िया को दूसरे के घर कामकाज करना, मालिक की डांट, अपने पतोहू से बहस और बेटे की अवहेलना झेलते हुए मृत्यु को प्राप्त होना।

"मालिक के घर गयी और बर्तन भी मांजा/मलकीनी को तेल लगाया/मालिक ने डांटा भी शायद/घर आयी फिर चूल्हा जोड़ा/और पतोहू से भी झगड़ी/बेटे से कहा-सुनी की/और अचानक बैटे-बैठे सांस रुक गयी/अभी तो चल सकती थी कुछ दिन मजे से/ओह बेचारी कुबड़ी बुढ़िया !"[2]

समाज में निरन्तर घटती मानवीय संवेदनाओं को सरल भाव में व्यक्त कर कवि ने बूढ़ी स्त्री का चित्रांकन अपनी इस कविता के माध्यम से किया है। सौन्दर्य से परिपूर्ण घाटियों के संकटग्रस्त क्षेत्रों में जीवों का निर्वाह करना चुनौतीपूर्ण है। ऐसे में निरन्तर परिवर्तित होते समाज में नारी जीवन आज भी संकटों से घिरा हुआ है। देश में बढ़ रही भ्रूण हत्या तथा बालिकाओं के शोषण की घटनाएँ हृदय को अन्दर तक क्षीण कर देती है। 'एक नवजात बच्ची को प्यार' कविता इसी तिरस्कृत दशा को व्यक्त करती है जिसमें परिवार में लड़की होने पर खुशी की लहर नहीं दिखाई देती।

कवि अपना दुःख व्यक्त करता है कि नन्ही कोमल बरगद की कोपल-सी देहवाली बच्ची के माथे को अभी तक किसी ने चूमा तक नहीं- "ओ नन्ही-बच्ची/क्या हुआ जो तुम्हें किसी ने चूमा तक नहीं/ तुम्हारी माँ मुँह फेर रोती रही रात भर/और तुम्हारा पिता लौट गया बाहर ही बाहर/तुम रोती रही, रोती रही/और किसी ने चूमा तक नहीं"[3]

एक बच्ची के जन्म पर समाज के रूढ़िग्रस्त विचारों का विरोध तथा समय के प्रवाह में स्त्रियों की उड़ान भरने की आशा ने कविता को एक ऊँचे स्तर तक पहुँचा दिया है। परमानन्द श्रीवास्तव लिखते हैं कि "अरुण कमल काव्यानुभव की प्रखरता के साथ अभिव्यक्तिसंयम के लिए भी ध्यान आकृष्ट करते हैं। एक गहरे आलोचनात्मक विवेक के बल पर ही वे अपनी कविताओं को सहज और तीखे अनुभवों में एक-सी एकाग्रता और संगठन दे पाये हैं।"[4]

इसी संग्रह की एक महत्त्वपूर्ण कविता जो कामगार औरतों की स्थितियों को बयां करती हैं। 'डेली पैसेन्जर' कविता में कवि ने अपनी यात्रानुभव के दौरान कामगार औरत का मार्मिक व सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। काम से घर वापस लौट रही स्त्री की थकावट का अनुभव कर कवि ट्रेन में उसे अपने पास बैठने को स्थान देता है तथा उसका स्पर्श पाकर भी वह आकर्षण में न बंधकर अपनी गहन मानवीय संवेदना को दर्शाता है। आत्मानुभूति और जीवन दृष्टि का बोध कराती कविता ये पंक्तियाँ - मैंने उसे कुछ भी तो नहीं दिया/इसे प्रेम भी तो नहीं कहेंगे/एक धुंधले-से-स्टेशन पर वह हमारे डिब्बे में चढ़ी/और भीड़ में खड़ी रही कुछ देर सीकड़ पकड़े/पाँव बदलती/फिर मेरी ओर देखा/और मैंने पांव सीट के नीचे कर लिये /और नीचे उतार दिया झोला/उसने कुछ कहा तो नहीं था/लगता है बहुत थकी थी/वह कामगार औरत/काम से वापस घर लौट रही थी एक डेली पैसेन्जर।"[5]

इस कविता के सम्बन्ध में परमानन्द श्रीवास्तव लिखते हैं कि - "डेली पैसेन्जर जैसी स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध को स्वस्थ रागात्मक लगाव से अंकित करने वाली एक भी कविता उस दौर में ढूँढने से भी शायद ही मिले। शुरु में ये पंक्तियों में होतीं (मैंने उसे कुछ भी तो नहीं दिया-इसे प्यार भी तो नहीं कहेंगे) न होतीं तो राग, आकर्षण, सहानुभूति के मिश्रित अनोखे भाव का शायद आभास भी न होता। उसने कुछ कहा तो नहीं था-में शायद छिपी हुई अर्थध्वनि यह है कि कुछ कहा था। शब्द से बाहर भी कथन की सत्ता हो सकती है। सहजता, सरलता, अर्थमय सरलता को काव्यमूल्य मानने की प्रेरणा नागार्जुन, त्रिलोचन से ही नहीं, अरुण कमल से भी मिलती है।"[6]

दूसरा काव्य संग्रह सबूत की कविता सखियाँ भी ग्रामीण परिवेश में रहने वाली स्त्रियों की दशा का वर्णन करती है। घर की दिनचर्या का सारा काम करते हुए दो सखियाँ माथे पर जल लेकर चलती हैं। कम शब्दों में रचित यह छोटी-सी कविता पाठक के हृदय में प्रभावशाली छाप छोड़ती है। माथे पर जल भरा गगन लिये/ठमक गयी अचानक वह युवती/मुश्किल से गर्दन जरा-सी घुमायी/दायाँ तलवा पीछे उठाया/और सखी ने झुककर खींचा रेंगनी

काँट/और चल दीं फिर दोनों सखियाँ/माथे पर जल लिये।"[7]

मामूली बातों पर भी मारपीट चुपचाप सहन कर स्त्री घर का सारा काम करती और किसी से कुछ नहीं कहती। एक बार भी बोलती कविता स्त्री के इसी अनकहे दुख को प्रकट करती है- अभी भी मैं समझ नहीं पाया/कि वह कभी बोली क्यों नहीं/मरते वक्तभी वह कुछ नहीं बोली/ आँखे बस एक बार डोलीं और/वह कभी बोली क्यों नहीं/ एक बार भी बोलती।"[8]

स्त्रियों की इस दोयम दर्जे की स्थिति पर कवि ने गहरी चिंता का भाव प्रकट किया है। यदि कानून द्वारा स्त्रियों को बराबरी का अधिकार मिला भी है तो भी पारिवारिक दबाव, नैतिकता व लोकलाज का भय स्त्रियों के आड़े आता ही है। अरुण कमल जीवन की अनंत संभावनाओं में आशावादी दृष्टिकोण रखते हैं। इनकी कविताओं में स्त्रियाँ दुख-दर्द झेलते हुए भी संघर्षरत हैं।

इन्होंने दरजिन शीर्षक कविता में एक ऐसी स्त्री का चित्र उकेरा जो पति से अलगाव होने के बाद अभावों में जीवनयापन करने को अभिशप्त है। सिलाई कला में दक्ष उसे अपनी अजीविका का साधन बनाती है। व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा में स्वयं को साबित करती दरजिन को फैशन के बदलते स्वरूप के कारण उसे पर्याप्त काम नहीं मिल पाता है। स्वाभिमानी व स्वावलम्बन की राह में चुनौतियाँ भी अधिक हैं। श्रमिकों की राह की कठिनाइयों को दर्शाती कविता का अंश उद्धृत है- "तो बीबी जी बोलिए कब आवें/ जिस वक्तहुक्म कीजिए/सिलाई? बाहर से आधे पर तो/सीती हूँ बीबी जी, छुपाना क्या है/यह नहीं कि उनसे कम आपसे जादे/जी? इससे कम? गुजारा नहीं होगा बीबी जी"[9] स्त्री जीवन की विवशता एवं सामाजिक ढाँचे के असन्तुलन को दर्शाती कल्याणी कविता के माध्यम से कवि ने उन अंशों का परिचय दिया जो उसे हाशिए पर खड़ा करते हैं- "जब भी आया कोई भाई किसी बहू का यही होगा/सबसे होगा कल्याणी का ब्याह तय/मजाक का रिश्ता जो ठहरा/ कल्याणी कुछ नहीं बोलती कल्याणी कुछ नहीं बोलती/क्या सच क्या मजाक,/कल्याणी?"[10]

'पुतली में संसार' संग्रह की नारीवादी श्रेष्ठ कविता 'स्वप्न' एक ऐसी लड़की की पीड़ादायी कथा है जो ससुराल वालों के अत्याचार झेलते हुए अन्त में तंग आकर ससुराल छोड़ देती है किन्तु मायके में भी वह अधिक दिन वह टिक नहीं पाती उसे वापस उसी जगह लौटना पड़ता जहां अनगिनत बार उसने मार खायी है- हर बार मार खा भागी/
हर बार लौट कर मार खायी/जानती थी वो कहीं कोई रास्ता नहीं है/कहीं कोई अंतिम आसरा नहीं है/जानती थी वो लौटना ही होगा इस बार भी/लेकिन वह जीवन से मृत्यु नहीं/मृत्यु से जीवन के लिए भाग रही थी/खूँटे से बँधी बछिया-सी जहाँ तक रस्सी जाती,/भागती"[11]

खूँटे से बंधी बछिया सी कविता की पंक्तियों में जो मार्मिक बिम्ब कवि द्वारा प्रस्तुत हुआ है वह जीवन्त उदाहरण है। वस्तुतः खूँटे से बंधी बछिया स्वयं को मुक्तकराने के लिए प्रयास करती है। यह संकेत स्त्री की अनैच्छिक वैवाहिक बन्धनों से मुक्तिकी कामना को दर्शाता है। जिस मुक्तिका स्वप्न उसने देखा है उसे यथार्थ में परिवर्तित करने की आकांक्षा रखती है। "बार बार रह रात एक ही सपना देखती/तकि भूल न जाये मुक्तिकी इच्छा/मुक्तिन भी मिले तो बना रहे मुक्तिका स्वप्न/बदले न भी जीवन तो जीवित बचे बदलने का स्वर"[12]

मृत्यु से भी कष्टकारी स्थिति को भोगने के पश्चात् भी वह जीवन के अन्त की बात नहीं सोचती। निराशा में आशा को तलाशती स्त्रियों के सन्दर्भ में अरुण कमल का मत है कि "स्त्री की मुक्ति दो बार में होगी। एक तो सभी पीड़ितो के साथ। दूसरे, स्त्री मात्र के रूप में। स्त्री ही सबसे ज़्यादा दलित है, दलितों में दलित। मैं खुद इस बात को ठीक से नहीं समझता था। स्त्री को नहीं, स्त्री-शरीर को देखता था। गाँव देहात के सामन्ती तरीके से सोचता था। धीरे-धीरे मुक्तहो रहा हूँ। मेरी इच्छा है कि अपने देश में जहाँ भी जाउँ, सड़कों-बाज़ारों-स्थानों में जितने पुरुष दिखें उतनी ही स्त्रियाँ। और कोई अकेला न घूमे, स्त्री-पुरुष साथ पूरा परिवार। सबसे ज़रूरी है कि स्त्रियाँ आर्थिक रूप से स्वतन्त्र हों।"[13]

'पुतली में संसार' संग्रह की 'अनुभव' कविता में अरुण कमल द्वारा इसी मनोभाव की अभिव्यक्ति हुई है। कवि का कहना है कि जीवन की सार्थकता पुरुष और स्त्री के साथ होने में है। पुरुष का अस्तित्व स्त्री के बिना अधूरा है। पुरुषों से पृथक आत्मनिर्भर स्त्री एक स्वतन्त्र पहचान बना चुकी है फिर भी घर-परिवार व समाज में वह शोषण का शिकार है। स्त्री और पुरुष दोनों को मिलकर इस विचारधारा को बदलने का प्रयास करना चाहिए। "और तुम इतना आहिस्ते मुझे बांधती हो/जैसे तुम कोई इस्तिरी हो और मै भीगी सलवटों/भरी कमीज।"[14]

'वापस' शीर्षक कविता में नई वधू के माध्यम से स्त्री की उस दशा का वर्णन करती है जहाँ नई विवाहिता का संसार अचानक से बदल जाता है। नए परिवार में अनजान लोगों के बीच लम्बा समय बिताने के बाद अपने पीहर की याद उसे बेचैन कर देती है लेकिन इस स्थिति का कोई विकल्प नहीं और थोड़ा रोधे-धोने के पश्चात् वह स्वयं को घर के कार्यों में व्यस्त कर लेती है। नई वधू की गहरी व्यथा का चित्रण दृष्टव्य है- "जैसे रो धो कर चुप हो हाथ मुँह धो/अंतिम हिचकी भर/वापस चूल्हे के पास लौटती है नयी वधू"[15]

निष्कर्षत : अरुण कमल की कविता में स्त्री संवेदना की अर्थपूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। हारना स्त्री की नियति नहीं, परिस्थितियाँ कितनी भी विपरीत हों उसके हौसले कभी पस्त नहीं होते। अरुण कमल की कविताएँ स्त्री की इसी विशेषता का परिचय देती हैं। स्त्री पीड़ा को गहराई से समझकर उन्होंने स्त्री को दुःख और सहानुभूति की कैद से मुक्तकर अपने काव्य के माध्यम से उसके मन में आशाभरी उड़ान भरने की इच्छा जगाई है। भले ही समाज में स्त्री को समानता का अधिकार पूर्णतः नहीं प्राप्त हो पाया है फिर भी अपनी नई जमीन तलाशती निर्भीक स्त्री अपने अस्तित्व को पहचान रही है व निरन्तर संघर्षरत है। सामाजिक बदलाव की यह छवि उन सभी स्त्रियों के लिए प्रेरणादायी है जो विषम परिस्थितियों से स्वयं को बाहर लाने के लिए प्रयत्नशील हैं।

संदर्भ सूची

1. कमल अरुण, अपनी केवल धार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1980, पृ0 सं0-19
2. वही, पृ. सं.-30
3. वही, पृ. सं.-48
4. श्रीवास्तव परमानन्द, समकालीन कविता सम्प्रेषण का संकट, वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ. सं.-205
5. कमल अरुण, अपनी केवल धार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1980, पृ. सं.-84-85
6. श्रीवास्तव परमानन्द, समकालीन कविता सम्प्रेषण का संकट, वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली, पृ. सं.-204
7. कमल अरुण, सबूत, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1989, पृ. सं.-41
8. वही, पृ. सं.-18
9. कमल अरुण, अपनी केवल धार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 1980, पृ. सं. 40
10. वही, पृ. सं.-77
11. कमल अरुण, पुतली में संसार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004, पृ. सं.-24
12. वही, पृ. सं.-25
13. कमल अरुण, कथोपकथन, वाणी प्रकाशन, 21. ए, दरियागंज, नई दिल्ली,पृ. सं.-33
14. कमल अरुण, पुतली में संसार, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004, पृ. सं.-94
15. वही, पृ. सं.-20

शोध निदेशक

प्रो. राम पाल गंगवार, आचार्य, हिन्दी विभाग,
बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर विश्वविद्यालय, लखनउ

शोधार्थी, हिन्दी विभाग
बाबासाहेब भीमराव अम्बेड़कर विश्वविद्यालय, लखनउ
मो. नं. - 8840598409,
ई मेल-shrutikirti03@gmail.com

झीनी झीनी बीनी चदरिया में बुनकर जातियों की अधिकार की लड़ाई

डॉ. लिट्टी योहन्नान

सारांशः इक्कीसवीं सदी का प्रारंभ कई प्रश्नों से घिरा हुआ है। ये प्रश्न स्वयं हमने नहीं पैदा किये हैं, बल्कि ये व्यक्ति होते समय के साथ अस्तित्व में आते रहे हैं। वर्तमान मानव कोलाहल भरे समाज में जीवन जी रहा है, परिणाम स्वरूप साहित्य में भी वही हलचल रेखांकित हुआ जाता है। समसामायिक जीवन का यथार्थ इतना सूक्ष्म जटिल एवं अदृश्य है कि उसको पकड़ पाना रचनाकारों के लिए सबसे बड़ी चुनौती है। विपरीत परिस्थितियों में हमें जीवन व्यतीत करने का कोई रास्ता नहीं दिख पा रहा है। हमारे चारों तरफ असुरों का जमघट है। वे हमें अपनी इच्छा, आशा और आकांक्षा के अनुसार जीने नहीं देते। फिर भी हम जी रहे हैं। इस प्रकार की गतिविधियों की यदि किसी साहित्य विधा ने सूक्ष्मता से चित्रित किया है, तो वह है उपन्यास साहित्य।

मानव अधिकार के अनेक प्रकार होते हैं, जैसे समानता का अधिकार, शिक्षा का अधिकार, नौकरी का अधिकार, शोषण के खिलाफ लड़ने का अधिकार आदि। झीनी-झीनी-बीनी चदरिया बिस्मिल्लाह जी के अब तक प्रकाशित उपन्यासों में सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। भारत भरद्वाज सही कहते हैं "यह उपन्यास बनारस के साड़ी बुनकरों के अटूट संघर्ष का दस्तावेज़ है।"[1]

मूल शब्द : अधिकार, बुनकर, लडाई, सूक्ष्मता

प्रत्सावना : समकालीन दौर के एक चर्चित उपन्यासकार के रूप में अब्दुल बिस्मिल्लाह का आगमन हिन्दी उपन्यासों की रचना परंपरा में नयी राह प्रदान करता है। अब्दुल बिस्मिल्लाह बहुमुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार हैं। गद्य और पद्य में आपका समान अधिकार है। जीवन जगत् के व्यापक अनुभवों से संपन्न बिस्मिल्लाह जी का रचना संसार अत्यंत विस्तृत है। हर्षदेव लिखते हैं- "कुछ व्यक्तियों का जीवन जीवन नहीं होता, बल्कि सक्षात् आश्चर्य होता है। ऐसे व्यक्ति अपने जीवन काल में अपने कर्मों से हमें चमत्कृत किए रहते हैं।"[2] बिस्मिल्लाहजी का जीवन भी हमें चमत्कृत कर देता है।

'झीनी - झीनी - बीनी चदरिया' उनका एक अलग किस्म का उपन्यास है, जो एक नये तरीके और तर्ज में बुनकरों की यथार्थ गाथा प्रस्तुत करता है। यह कृति बनारस के बुनकरों की त्रासद गाथा है। इसमें बुनकर जीवन की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक प्रकृति को व्यापक फलक पर रेखांकित किया गया है। बिस्मिल्लाह जी ने इस उपन्यास में बुनकरों के जीवन संघर्ष एवं विद्रोह के ज़रिए बदलते भाव बोध को दर्शाया है। डॉ. पाण्डुरंग पाटील ने आलोच्य उपन्यास के बारे में लिखा है, "यह बुनकरों के परंपरागत शोषण से उपजी मानवीय संवेदना का प्रमाणिक लेखा जोखा है। लेखक ने बुनकर जीवन के तमाम अंतर्विरोध तथा जीवन शैली को परिवेश एवं स्थानीय भाषा की सहायता से उद्घाटित किया है।"[3] उपन्यास की संपूर्ण कथा में बुनकर जीवन केन्द्र में है। बनारसी साड़ी अपनी खूबसूरती के लिए विश्व भर में प्रसिद्ध है, लेकिन यह खूबसूरत साड़ी बनानेवाले बुनकरों की ज़िंदगी कितने फटेहाल है, उपन्यासकार बिस्मिल्लाह जी इस सत्य को बहुत बेबाकी से पहचानते हैं।

प्रस्तुत उपन्यास में वर्ग-संघर्ष और वर्ग विभाजन का चित्रण है। उपन्यास को 'ताना' और 'बाना' जैसे दो खण्डों में रचा गया है। लेखक ताना खंड में बुनकरों के तीज, त्योहार, मेले-ढेले शादी-ब्याह आदि के साथ-साथ उनके त्रासद जीवन का मार्मिक चित्रण करते तो दूसरे खंड 'बाना' में सर्वहारा वर्ग के स्वप्नों को यथार्थता की धरती में अंकुरित होते हुए दिखाया गया है।

'झीनी झीनी बीनी चदरिया' उपन्यास वर्तमान

स्थिति में समाज में होनेनाले आर्थिक, सामाजिक शोषण का जवाब है। उपन्यास का नायक मतीन अपनी पूरी ज़िंदगी संघर्ष से जूझते हुए भी व्यवस्था के सामने हार जाता है, परंतु संघर्ष करते नहीं थकता। इकबाल आदि व्यक्तिवर्ग चेतना से प्रेरित होकर शोषण के विरुद्ध लडाई आरंभ करते हैं। समाज में निर्मित वर्ग संघर्ष के कारण संविधान द्वारा दिये गये अधिकारों का लाभ सिर्फ पूँजीपति लोग उठाते हैं और समाज के ही महत्वपूर्ण माने जानेवाले सर्वहारा वर्ग को सामाजिक, धार्मिक तथा शौक्षिक अधिकारों से वंचित रखा जाता है। मार्क्स के अनुसार "समस्त समाजों का इतिहास दास व्यवस्था से लेकर पूँजीवाद व्यवस्था तक वर्ग संघर्ष का इतिहास है।"[4] स्वाभाविक रूप से मनुष्य अपने अधिकारों को पाने के लिए संघर्ष करता परिलक्षित होता है। हमारे समाज में यह मानवता प्रचलित है कि जब एकाध चीज़ सहज तथा विनम्रतापूर्वक माँगने से नहीं मिलती तब उसे छीनकर प्राप्त करना उचित है।

'झीनी -झीनी - बीनी चदरिया' में अधिकार के लिए किये गये संघर्ष का चित्रण अत्यधिक मात्रा में मिलता है। बशीर का परिवार आर्थिक अभाव से पीड़ित है। बशीर की बीमारी के कारण उसकी पत्नी हाजी साहब से कर्ज लेती है, लेकिन आर्थिक विपन्नता के कारण बशीर कर्ज समय पर नहीं दे पाता। हाजी साहब कर्ज के बदले में बशीर के घर पर कब्जा करना चाहते हैं और कहते हैं - "फेंक दो बुरचोदीवाले का कुल सामान। और म्याँ, कब्जा हो गया बशीर के घर पर हाजी अमीरूल्ला गिरस का।"[5] बशीर का घर भी मानो खंडहर के समान ही था। फिर भी हाजी साहब बशीर के घर पर कब्जा करते ही हैं। इसी कर्ज के बदले में हाजी साहब के बेटे ने बशीर की बेटी रेहनवा की इज्जत लूटी थी। बशीर हाजी साहब से होनेवाले शोषण तथा अन्याय - अत्याचार को खामोश रहकर सहता है। जबकि हाजी साहब मौके का लाभ उठाकर अपना वर्चस्व स्थापित करने के लिए बशीर के घर पर अधिकार जमाते हैं।

प्रस्तुत उपन्यास का केन्द्रीय पात्र मतीन बनारस के मुसलमान बुनकरों के अधिकारों के लिए काफी संघर्ष करता हुआ परिलक्षित होता है। लेकिन मतीन संघर्ष में हारता है, फिर भी वह प्रयत्नशील है। सरकार से दी गयी अनेक सहूलियतें हैं जिनका लाभ उठाना मतीन अपना अधिकार समझता है। वह सोसायटी के लिए धनराशी प्राप्त करने के लिए बैंक में जाती है। लेकिन बैंक में उसको अलग ही अनुभव होता है। बैंक मैनेजर मतीन से कहते हैं - "जनाब अब्दुल मतीन अंसारी साहब, जाइए और चुपचाप अपनी साड़ी बिनिये। फ्राड करना बहुत बड़ा जुर्म है।"[6] मतीन खामोश रहता है। वास्तविक फ्राड तो हाजी साहब ने किया था, उन्होंने फर्जी सोसायटी बनायी थी। यहाँ मतीन और बैंक मैनेजर में संघर्ष दृष्टिगत होता है।

झीनी - झीनी - बीनी चदरिया' के मतीन की समृद्धि की संकल्पना कुछ अलग ही परिलक्षित होती है। उसे ढेर सारे भौतिक साधन नहीं जुटाने हैं। वह अपने बेटे इकबाल को मात्र पढ़ाकर शिक्षित बनाना चाहता है - "मतीन की इच्छा है कि इकबाल को वह अंग्रेज़ी स्कूल में पढ़ाएगा। .....मदरसे में पढ़ाकर क्या होगा? क्या मौलवी बनना है उसे, कि लड़का दाढ़ी बढ़ाकर चटाई बँधना लिये इस मस्जिद से उस मस्जिद तक घूमता रहे ज़िंदगी भर, नहीं।"[7] उक्तकथन के आधार पर कहा जा सकता है कि मतीन लड़के की पढाई के लिए किसी भी प्रकार के मोल को उठाने के लिए तत्पर है। उसे इस बात पर विश्वास हुआ है कि शिक्षा के द्वारा ही शोषण से मुक्ति संभव है। अतः मतीन की दृष्टि से शिक्षा प्राप्त कराके जीवन में परिवर्तन लाना आसान है।

मतीन का बेटा इकबाल पढ़ा-लिखा है। परंपरा से चले आए बुनकरों के शोषण एवं पिताजी के संघर्ष को उसने नज़दीक से देखा है। मतीन से प्राप्त संघर्ष चेतना के बूते पर वह मज़दूर बुनकरों को संगठित करता है और बुनकरों को अपने हक, अधिकार, शोषण तथा श्रम आदि के बारे में जानकारी देता है इकबाल के अलफाज अंगारों की तरह जल रहे हैं - "यह कटौती, यह साजिश, यह बद इन्तजामी खत्म होनी चाहिए। हमारे बापों ने भले सब कुछ बर्दाश्त किया, पर हम नहीं करेंगे।"[8] इकबाल कोठीवालों द्वारा सदियों से होनेवाले अन्याय के खिलाफ आवाज़

उठाकर मज़दूर बुनकरों की गिरसों के आले से बाहर निकलता है। मतीन एवं बेटे इकबाल के लंबे संघर्ष का ही परिणाम था कि अंसारी बुनकरों के लड़कों को पढ़ने का अधिकार मिला।

जब मतीन बुनकरों के अधिकारों को प्राप्त करने में असफल होता है तब मतीन का बेटा इकबाल मतीन की अधिकारों से संबंधित आकांक्षाओं को पूरा करने का भरसक प्रयास करता है। वह मुसलमान बुनकरों को अपने अधिकारों की जानकारी देता है और कहता है - "हज़रत! हमें अपने हक के लिए खुद लड़ना होगा। आप जानते हैं कि जिस बनारसी साड़ी की धूम पूरी दुनिया में है आज से नहीं सैंकड़ों बरस से और जिसके बल पर बडे बडे गिरस्ता लोगों की इमारतें तनी जा रही है, ऐशो, इशरत के सामान से इनके घर भरे जा रहे हैं उस साड़ी को बनानेवाले हम है..... कर्ज के बोझ से हमारे कंधे जमीन तक झुक गये हैं। हमारे करघे कर्ज पर! रेशम कर्ज पर सब कुछ कर्ज पर और बदले में हमें क्या मिलता है?"[9] इससे स्पष्ट होता है कि सभी मुसलमान बुनकरों पर इकबाल की वाणी का प्रभाव पड़ता है और वे अपने हक के लिए लड़ते हैं। इकबाल मतीन का लड़का है, जो पढ़-लिखकर अफसर तो नहीं बन पाता, लेकिन अपनी बिरादरी के लोगों पर होते हुए अन्याय तथा अत्याचार के खिलाफ आवाज़ उठाता है। वह समाज के लोगों को समा लेता है। भाषण देकर उनमें अपने हक के लिए जागृत पैदा करता है। अपने हक के लिए अनशन करता है। इकबाल विद्रोही तथा क्रांतिकारी है। वह अपनी माँ की मौत के बाद किये जानेवाले धार्मिक कार्यों को बकवास तथा ढकोसला समझाता है।

'झीनी-झीनी-बीनी चदरिया' उपन्यास राजनीतिक चेतना से ओत-प्रोत है। उपन्यास के बाना खण्ड में सर्वहाराओं के स्वप्नों को यथार्थ की धरती में अंकुरित होते देखा जाता है। हनीफ जब अपने ही समाज के राजनीतिक अमीरुल्ला और शरफुदीन द्वारा छला जाता तब वह अपने पूर्व कृत्यों पर पछताता है। मतीन का विश्वास भी अब जाग उठता है। "यानी वह लडाई वहीं खत्म हो गयी थी और लडाई का सिर्फ वही एक पहलू नहीं था। यहाँ तो कदम- कदम पर अन्याय है। कदम-कदम पर लडाई है।"[10] इस तरह उनकी राजकीय लडाई में नयी स्फूर्ति, नयी शक्ति और गति आ जाती है।

इस तरह बनारस के बुनकर अपने अधिकारों के प्रति जागृत होकर एक होते हैं और अन्याय शोषण करनेवालों के प्रति आक्रोश व्यक्तकरते हैं, जिससे उनकी राजनीतिक चेतना दृष्टिगोचर होती है। उपन्यास का युवा पात्र इकबाल चौराहे पर खड़ा होकर भाषण करता है - "इसके लिए हमें एक होकर लड़ना होगा। जिस बनारसी साड़ी को आप खून-पसीना एक करके अपनी मेहनत और फन से तैयार करते हैं, क्या उस साड़ी को आपके घर की औरतें भी पहन सकती है? क्यों आपकी बीवी मामूली कपड़े के सलवार कमीज से ही अपना तन ढकती है? दोस्तों, आज आप तय करें कि इस निजाम को आप बदलकर रहेंगे।"[11] इकबाल अपने अस्तित्व की लडाई जीतने के लिए सबको एक होने की तथा सामाजिक बुराइयों को नष्ट करने की अपील करता है। परिणामतः पूँजीपतियों के शोषण के विरुद्ध बनारस के बुनकरों ने एक होकर अपने अधिकार के लिए हड़ताल भी की थी।

पूँजीपति पूँजी जमा करके पूँजीहीन लोगों का निरन्तर शोषण करते आये है। निम्न वर्ग तथा श्रमिक वर्ग का आर्थिक शोषण करना अपना कर्तव्य समझकर गरीबों को और ज्यादा गरीब बनाने में वे प्रयत्नशील रहते हैं। 'झीनी - झीनी - बीनी चदरिया' में बड़े गिरस्त सामान्य बुनकरों से कम दामों पर कपड़ा खरीदकर ज्यादा दामों पर बेचते हैं। बुनकरों का पैसा समय पर न मिले इसकी व्यवस्था भी करते हैं। बुनकरों का जीना मुश्किल करना इन पूँजीपतियों का शौक बन गया है। भारत भारद्वाज ने प्रस्तुत उपन्यास के बारे में ठीक ही लिखा है कि "यह औपन्यासिक कृति मात्र बुनकरों की समस्या की रपट नहीं है, बल्कि बुनकरों की वर्तमान दशा के लिए उत्तरदायित्व पूँजीवादी समाज के ठेकेदार गिरस्ता और कोठीवाले के घिनौने शोषण की प्रक्रिया को उजागर करनेवाला भी है। बुनकरों की नयी पीढ़ी शोषण करनेवाले पूँजीपति गिरस्ता के खिलाफ संघर्ष छेड़ देती है।"[12] इस पूँजीवादी शोषण

चक्र में तबाह होकर भी बुनकर संघर्ष का रास्ता नहीं छोड़ते और अपने अधिकार के लिए लड़ते हैं।

प्रस्तुत उपन्यास का पात्र इकबाल नयी पीढ़ी का प्रतिनिधि है। वह अपने पिता मतीन के शोषण के खिलाफ़ बड़ी संघर्ष की मशाल को अपने हाथ में लेकर मज़दूर बुनकरों को एकता निर्माण की माँग करता है। वह बुनकर मज़दूरों को समझाता है कि अनेक बुनकर भाई अपने लड़कों को अनपढ़ रखकर तुंरत उनके हाथ में साड़ी की पेटियाँ थमा देते हैं और ये बेचारी भी कम मूल्य पर इन साडियाँ को बेच डालती है। इकबाल दुनिया में चली स्पर्धा-होड़ की बात उन्हें समझाता है, पुश्तैनी धंधे के साथ-साथ हमें तरक्की करती हुई दुनिया के साथ भी चलना होगा, तभी अपने हक के लिए लड़ने का जज्बा हमारे भीतर पैदा हो सकता है, वरना नहीं। अगर अभी से हम नहीं चेतते तो यह सरमायदाराना निजाम हमें खत्म करके दम लेगा। इसलिए आप हज़रत से मेरी पुरजोर अपील है कि ..... दुनिया के मज़दूर एक हो।"[13] ठीक इस कथन के अनुसार ही छैल बिहारी कण्टकजी ने मज़दूरों की संघर्ष-चेतना जगायी है "एक हो दुनिया के मज़दूर...../ सिंहासन हिल उठे भयंकर संघर्षों में/सहमे पूँजीवाद, ...युग, हो दुख चकनाचुर/एक हो दुनिया के मज़दूर।"[14]

निष्कर्ष : कहा जा सकता है कि झीनी झीनी बीनी चदरिया में बनारस के साड़ी बुनकरों के जीवन की त्रासदी तथा उनके संघर्षरत जीवन को चित्रित किया गया है। प्रस्तुत उपन्यास में बुनकरों का संघर्षरत रहते हुए शोषण के खिलाफ़ एकजुट होकर लड़ते रहना चित्रित है। भारतीय संविधान के अनुसार निम्न वर्ण को जितना संरक्षण देने का प्रयास हुआ, उतनी ही असुरक्षिता इस वर्ग को महसूस होती है। शायद इसी कारण से संविधानकर्ता ने वर्ग-संघर्ष से भी बढ़कर वर्ण-संघर्ष को महत्वपूर्ण माना है। इस उपन्यास में लेखक ने बुनकर तथा अन्य निम्नवर्गीय समाज जीवन के अनेक अनछुए पहलुओं को रेखांकित किया है, किन्तु एकजुट होकर मानवाधिकार के लिए उनकी लडाई बिल्कुल प्रभावी और सराहनीय है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. गोपाल राय (सं) - 'समीक्षा' त्रैमासिक अक्तूबर - दिसंबर, 1987, पृ.सं.9
2. कन्हैयालला नंदन (सं) - गगनांचल त्रैमासिक पत्रिका- अप्रैल - जून 1999- पृ.सं.49
3. डॉ. वी.के.कलासवा- शोध के नए आयाम - पृ.सं.74
4. मोटूरि सत्यनारायण (सं) - विश्वज्ञान संहिता कोश भार-1, पृ.सं.312
5. अब्दुल बिस्मिल्लाह : झीनी झीनी बीनी चदरिया - पृ.सं.51
6. अब्दुल बिस्मिल्लाह : झीनी झीनी बीनी चदरिया - पृ.सं.103
7. अब्दुल बिस्मिल्लाह : झीनी झीनी बीनी चदरिया - पृ.सं.30-31
8. अब्दुल बिस्मिल्लाह : झीनी झीनी बीनी चदरिया - पृ.सं.192
9. अब्दुल बिस्मिल्लाह : झीनी झीनी बीनी चदरिया - पृ.सं.39
10. डॉ. जालिंदर इंगले : समकालीन हिन्दी उपन्यास : वर्ग एवं वर्ण संघर्ष, पृ.सं.177
11. अब्दुल बिस्मिल्लाह : झीनी झीनी बीनी चदरिया - पृ.सं.100
12. गोपाल राय (सं) - समीक्षा त्रैमासिक अक्तूबर-दिसंबर, 1987
13. डॉ. भाउसाहेब नवल : उपन्यासकार अब्दुल बिस्मिल्लाह की संघर्ष चेतना, पृ.सं.53
14. रामविलास शर्मा : भारत में अंग्रेज़ी राज और मार्क्सवाद, खण्ड दो, पृ.सं.429

असिस्टेंट प्रोफेसर एवं अध्यक्षा, हिन्दी विभाग,
मार थोमा कॉलेज तिरुवल्ला, केरल,
litty08@gmail.com

समकालीनता में कबीर की भूमिका

डॉ. जी. सुजिदा

समकालीनता का समय बड़ा ही संवेदनशील है, इस समय में साथ चलने वालों की नहीं, बल्कि सोच-विचार कर अमल करने की बात मुख्य है। चाहे विषय कुछ भी हो उस पर विमर्श करने की मांग समकालीनता के अंतर्गत समाहित होती है। साहित्य को समाज का दर्पण न होकर उस प्रतिबिंब की धुरी से हटकर सोचने पर मजबूर करने वाला होना चाहिए। इस समाज में जितने भी महान कलाकार हुए, वे साहित्य जगत से अछूते न थे। ऐसे ही महान संतों में एक गिने जाते हैं, संत कबीर। कबीर को समझना आसान नहीं है, लेकिन साहित्य के भक्तिकालीन नजरिये से देखे लो कबीर सटीक भी लगते हैं।

समकालीन युग बड़े-बड़े संघर्षों से पगा है। ऐसे में कबीर ही एक संत है जो इस पूरे मानव राशि को ही नहीं,समूचे विश्व को बचा सकते हैं, क्योंकि पूरे समाज की चिंता उनका सरोकार है। अब सवाल यह उठता है कि क्या समकालीन साहित्यकार कबीर की सोच अपने में समाहित कर सकते हैं? यदि इस सवाल का जबाब हाँ है तो यह एक अंर्तविरोध की स्थिति पैदा कर सकता है। क्योंकि कबीर जितने सत्य के साधक थे, आज के साहित्यकार सत्य के मखोटे पहने रहते हैं। सत्य की साधना से तो वे दूर होते जा रहे हैं,साहित्यिक राजनीति के घेरे में फंसे, समकालीन साहित्यकार अपने स्वार्थों की पूर्ति करने में मशगूल हैं। लेकिन कबीर में यह कूवत थी। वे समाज के आडंबरों के खिलाफ बोले,धर्म के ठेकेदारों से लोहा लिया। वे न हिन्दू के थे, न मुस्लिम के, वे मानवतावाद के पुजारी थे। वे न प्रार्थना में विश्वास रखते थे, न नमाज़ में, उनकी यही सोच, उन्हें हर व्यक्ति से अलग रखती है। उन्होंने ब्राह्मण और मुस्लिम दोनों जातियों से सवाल किए। शुकदेव सिंह लिखते हैं कबीर ने ब्राह्मण की सच्चाई को परखा, सवाल किया "ब्राह्मण किसी का कार्य नहीं करता,सभी चोरियाँ ब्राह्मण ही करता है,सभी वेदों की रचना उसी ने की है।" धर्म व्यवस्था का विरोध करते हुए मुसलमानों से भी पूछते हैं हे मुसलमान,मैं तुमसे पूछता हूँ कि लाल-पीले का भेद क्या है "किस सूरत को तुम सलाम करते हो? काजी तुम्हारा काम क्या है? तुम घर-घर जबह करते हो?" (भए कबीर कबीर शुकदेव सिंह) याने कबीर ने धर्म व्यवस्था के खिलाफ आवाज़ उठाई। कबीर ने धर्म के नाम पर श्रम की शिक्षा दी थी। वे हमें श्रम के समान और धर्म के स्वाधिकार के बारे में बताते हैं। श्रमिक और धार्मिक के बीच की सारी विभाजन रेखाएँ वे मिटाना चाहते थे।

पूरे विश्व में यदि कबीर की सोच रखनेवाला संत न होता तो, आज की इस समकालीनता का भूतकाल अंधकारमय होता। कबीर इस साखी से इसे प्रमाणित भी करते है "आग लगी आकाश में भू पर गिरे अंगार जो संत न होते जगत में जल जाना संसार" यानि कबीर जैसे संतों के बिना जगत अधूरा ही रह जाता।

भले ही कबीर एक संत थे। लेकिन वे अपनी कोरी भावनाओं में नहीं रहे, उन्होंने जो समाज में देखा-समझा उसका उन्होनें अध्ययन किया ।इस अध्ययन के दौरान अनीति और आड़ंबर का पूर्ण विरोध किया।

उसी विद्रोह को आज प्रतिरोधी चेतना के रूप में हम समकालीनता में देख सकते हैं। दलित विमर्श की बात की जाए तो कबीर को इस विमर्श के मील के पत्थर माने जा सकते है। कबीर ने मनुष्य की मनुष्यता को जगाने ,उन्नत करने,संवेदनीयता के उजाले से जड़ता के भौतिकता को काटने का प्रयास किया।" दूसरी ओर कबीर माया के विरोधी थे,यह हमें ज्ञात भी होगा। वे स्त्री की कामिनी रूप को भी माया मानते थे।ये माया विरोधी तत्व है,भक्ति के मार्ग में बाधक है। माया एक ऐसी शक्ति है जो सत्यस्वरूप ब्रह्मा के अस्तित्व को भूलाकर मनुष्य को सांसारिक ऐश्वर्यों में लिप्त करती हुई उसे विकार युक्त बना देती है। आज का व्यक्तिभी इसी मोहजाल में फ़ँसा हुआ है। विकारयुक्त जीवन वह व्यतीत करता है। कबीर ने इस माया का प्रतिरोध किया था क्योंकि वे जानते थे कि उनकी राम स्वरूप ब्रह्मा के लिए जो भक्ति है वो माया के आने से नष्ट हो जाएगी। समकालीनता के इस समय में व्यक्ति का कामवासना युक्त होना दिखाया गया है,साहित्य की हर एक विधा इस बात की साक्षी है। समाज में हर कोई दूसरा व्यक्ति इस मायापरा के जाल में फंसा है,कामवासना व्यक्ति को अपने अस्तित्व से अलग कर देती है। हर बंधन में काम की माया दिखाई देती है। इस कामवासना ने समाज को दूषित कर दिया है।कबीर ने समाज को इस माया से मुक्त होने का आह्वान दे दिया था।

वर्तमान संदर्भ में सबसे बड़ी चुनौती मानवतावाद की है, जिस मानवतावाद की आज सबसे बडी ज़रूरत है, वह मानवतावाद आज खोखला बन गया है। लोग आज मीडिया के माध्यम से मानववाद का ढोग रहो रहे हैं। कबीर ने जिस मानववाद की बात कही थी या फ़िर जिस मानवतावाद के लिए उन्होंने अपना जीवन समर्पित किया था,आज वह मानववाद दिखावा बन गया है। सच तो यह है कि जो व्यक्ति सभ्य एवं सुसंस्कृत पुरुष है वह मानववादी है। विजयेन्द्र स्नातक लिखते है कबीर ने अपने जीवन में दूसरों के लिए कष्ट को स्वीकार किया था। उनका जीवन जनता के उद्बोधन में व्यतीत हुआ। वह अपने लिए नहीं संसार के लिए रोते और विलाप करते रहे। (कबीर संपादक विजयेन्द्र स्नातक) बलदेव वंशी भी मानववाद के स्वामी कबीर पर लिखते हैं। कबीर के पास कालजयी सोच ही नहीं मानववादी सिद्ध - दृष्टि और समुद्र से गहरी संवेदना है। मानव मुक्ति के लिए विस्तीर्ण आकाश है तो अस्तित्व रक्षा के लिए शस्य - श्यामल अक्षय जीवन कोशमय धरती। कबीर प्रेम और करुणा के अवतार हैं। धरती पर के अंतिम प्राणी और प्रकृति की वाणी है। (कबीर की चिंता-बलदेव वंशी) आज का मानव इस मानवतावाद से कोसों दूर है। यही आज का कटु सत्य है।

समाज की सबसे बड़ी विडम्बना भी यही है कि उसे अध्यात्म से कुछ लेना नहीं है।जो शिक्षा हमें स्नेह करना सिखाए वास्तव में वही श्रेष्ठ है। लेकिन आज के मनुष्य में यह सोच बिलकुल न के बराबर है। इस संदर्भ में हमें कबीर की रहस्यवादिता पर दृष्टि दौड़ानी चाहिए। उनका रहस्यवाद वर्तमान समाज की माँग बन गया है। कबीर का रहस्यवाद अहम का नाश करता है। जो इस समय की सबसे बड़ी चुनौती भी है। रामकुमार वर्मा लिखते हैं रहस्यवाद के उन्माद में जीव-इन्द्रिय जगत से बहुत उपर उठकर विचार शक्ति और भावनाओं का एकीकरण कर अवनत और अंतिम प्रेम के आधार में मिल जाना चाहता है यही उसकी साधना है, यही उसका उदेश्य है। उसमें जीव अपनी सत्ता खो देता है। मैं मेरा और मुझ का विनाश रहस्यवाद का एक अवश्यक अंग है। (कबीर संपादक विजयेन्द्र स्नातक) यानि अहम का विनाश

ही आज के समय की माँग है। स्वार्थता ने जहाँ आज पूरे समाज पर कब्ज़ा कर रखा है, वहाँ कबीर का यह रहस्यवाद औषधि का काम कर सकता है।

कबीर ने कभी अपने सिद्धान्तों के खिलाफ जाकर कोई कार्य नहीं किया। उनकी कथनी और करनी में कोई अंतर न था। उनके जैसा फक्कडपन किसी और महापुरुष में नहीं था। उन्होंने वर्ण व्यवस्था,जाति पांति और संप्रदाय भेद-भाव का विरोध बड़ी सटीक तर्कशीलता से किया है। जो तू बाभन-बाभनी जाया, तो आन राहे काहे ना आया / जो तुं तुर्क तुरकनी जाया,तो भीतर खतना क्यों न कराया - अर्थात उन्होंने मुस्लिम और ब्राह्मण के बीच की उच्च-नीच की गहराई को मिटाने की कोशिश की। कबीर की दोहे पर्यावरण विमर्श पर भी सटीक ठहरते हैं। उनका यह दोहा जंगल में लगने वाली आग का साक्षी है। "आगे-आगे दो जलैं,पीछे हरिया होइ/ बलिहारी ता विरष की,जड़ कारे फ़ल जोई।"

भाषा की दृष्टि से कबीर समकालीनता में खरे उतरते हैं। कबीर की भाषा बड़ी प्रभावपूर्ण है, उनकी भाषा वर्तमान समय की चुनौतियों से टक्कर लेती हुई नज़र आती है। उनकी भाषा जनता के हरेक वर्ग-वर्ण से जुड़ी हुई है। भाषा सधुक्क्ड़ी है, जिसमें राजस्थानी,पंजाबी भाषा का मिश्रण देखने को मिलता है। उनकी भाषा में कई प्रदेशों की बोलियाँ मिलती हैं।जैसे बनारस, मिर्जापुर, गोरखपुर के आस-पास की बोलियाँ इसमें प्रमुख हैं।

ब्रज - मैरो मन लागे तोहि रे /राजस्थानी - क्या जाणो उस पीव कू कैसे रहसी संग/खडी बोली - तू तू करता तू हुआ मुझसे रही न हूँ। /अवधि- जस तू तस तोहि कोई न जान/भोजपूरी फूल भल फूलल मलिन भल गाथल।

कई विद्वान कबीर की भाषा को एक बोली राजस्थानी,अवधि,भोजपूरी मानते है ।लेकिन ऐसा कहना उचित नहीं होगा,क्योंकि कबीर का रचनाकाल ईसा की 15 वीं सदी है और उस समय तक वह ब्रज,राजस्थानी,अवधि,भोजपूरी आदि रूप में पूर्व रूप से अलग नहीं हुई थी,जिस रूप में आज है। इसी कारण बोलियों का मिश्रित रूप होना सहज ही है।इसका सीधा सा अर्थ यह है कि कबीर की भाषा हर तबके से निकलती है।

गोया समकालीनता के परिप्रेक्ष्य में कबीर समीचीन ठहरते हैं। वे बहुसंखक वर्ग से जुड़े हैं,जो पीड़ित हैं दमित है,शोषित है। अर्थात कबीर का राम उस वर्ग का प्रतिनिधि है जो उपेक्षित है। समकालीन विमर्शों के हर विमर्श में कबीर का राम विद्यमान है।चाहे वह स्त्री,दलित,आदिवासी,अल्पसंख्यक,उपेक्षित वर्ग क्यों न हो,सबमें कबीर के राम की छवि दिखाई देती है। संपूर्णता कहे तो कबीर के राम ,कबीर के ही नहीं हर वर्ग के राम है। समकालीनता में कबीर ज़िंदा ही रहेगें। जब तक हर तबके के वर्ग शोषण से मुक्त नहीं होगें,तब तक कबीर समकालीन ही बने रहेगें और यही समकालीनता में कबीर की भूमिका की निशानी है।

संदर्भ

1. भए कबीर कबीर- शुकदेव
2. कबीर - विजयेन्द्र स्नातक संपादक
3. कबीर की चिंता- बलदेव वंशी

असिस्टेन्ट प्रोफ़ेसर
निर्मला कालेज
मुवाटुपुषा, केरल

'हमका दियो परदेस में' अभिव्यक्त जेंडर असमानताएँ

रम्या.एस.

आज ज़माना बिलकुल बदल गया है। आधुनिकता के स्थान पर उत्तराधुनिकता आ गयी है। लेकिन हमारे समाज की कुछ रीतियाँ आज भी पूर्ण रूप से बदला नहीं है। इसमें प्रमुख है जेंडर असमानताएँ। यह भेदभाव जिस प्रकार पुराने ज़माने में था आज भी थोड़ा बहुत परिवर्तन के साथ समाज में विद्यमान है। वास्तव में इसकी नीव हमारे अपने परिवार से ही है। परंपरागत विचार ही इसका मूल कारण है। भारत में हरेक साल अनेक बच्चियों की हत्या भ्रूणावस्था में हो जाती है। लिंग निर्णय ही इसका मुख्य कारण है। लड़की होने के कारण नवजात को मारनेवाले लोग भी हमारे समाज में विद्यमान हैं। इसप्रकार देखे तो नारी की दुरवस्था माँ की कोख से शुरु होती है। इसके पीछे का मूल कारण जेंडर असमानताएँ ही हैं। इसके बारे में डॉ. मोहिनी शर्मा लिखती है "भारतीय समाज में नारी की स्थिति पुरुष की तुलना में प्राचीनकाल से हीन रही है । संतान में पुत्र को अधिक महत्व प्राप्त हो गया और पुत्री के स्थान को हेय बना दिया था।"[1]

2001 में प्रकाशित 'हमका दियो परदेस' में मृणाल पाण्डे ने जेंडर असमानताओं के विभिन्न पहलुओं को हमारे सामने लाने का सफल प्रयास किया है। उपन्यास की नायिका टीनू समझदार लड़की है और बचपन से लड़का - लड़की भेदभाव के बारे में परिचित हो जाती है । अल्मोड़ा की अपनी नानी के घर में उसने देखा कि बेटों के बेटों की ही पूछ होती है। बेटी की बेटियों से कोई कुछ नहीं पूछी जाती हैं क्योंकि बेटियाँ पराए घर की संपत्ति होती है । इसलिए बचपन से घरवाले बेटी को अपना नहीं मानते हैं । इसप्रकार उसकी बच्ची भी इनके लिए परायी है । यहाँ नारी की अवस्था देखो, उसे घरवाला अपना नहीं मानते हैं और शादी के बाद पति का परिवार भी । टीनू कहती है कि "मुझे बहुत जल्दी ही समझ में आ गया था कि लोगों से अटे घर में जहाँ बेटों के बेटों की ही पूछ होती हो, बेटियों की बेटियों का काम चिड़चिड़ी या रोनी होने से नहीं चलेगा । उन्हें बडे लोगों की निगाह में चढ़ना हो तो उन्हें बतरस का जादू जगाना आना चाहिए।"[2] ऐसे घरों में बच्चियों को बचपन से अपना अस्तित्व स्वयंसिद्ध करना पड़ता है। इसके लिए वे रोना छोड़कर अनकिए काम के बारे में किस्से गढ़ते थे या कभी बातों को बढ़ा - चढ़ाकर कहते थे। स्वरों के नाटकीय उतार -चढ़ाव भी इस्तेमाल करते थे। ये सबकुछ बच्चियाँ दिखावे के लिए नहीं करती है बल्कि सबका घ्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए यह उनके लिए अनिवार्य था।

लेकिन बेटों के बच्चों को इसकी ज़रूरत नहीं है क्योंकि पूरे परिवारवाले उनके साथ हैं । लड़का - लड़की भेदभाव का बच्चों पर कितना असर पड़ता हे ,इसका उदाहरण है यह प्रसंग । इसके द्वारा मृणाल पाण्डे यह व्यक्त करना चाहती है कि आज के समाज की चेतना के अनुरूप प्रतिरोध करने की हिम्मत अब लड़कियों में भी विकसित हो रही है ।

समाज की वास्तविकता का वर्णन हरेक उपन्यासकार का दायित्व है क्योंकि यह समाज के मार्गदर्शन में सहायक होगा । यहाँ मृणालजी इस कटु सत्य की ओर इशारा करती है कि हमारे समाज के कुछ लोग ऐसे हो जो बाहर से सुसंस्कृत और आधुनिक

दिखते हैं लेकिन वे अंदर से परंपरागत विचारों में मग्न होकर जीना पसंद करते हैं। टीनू की मामी का मायका इसका नमूना है । मामी के ताउ साहब बड़बाज्यू को बेटियाँ पसंद नहीं थीं। उनके मत में "बेटियाँ ही बेटियाँ तमाम अच्छे घरानों में जहाँ देखो वहाँ बेटियों की भरमार है।"[3] वे सबकुछ अपने पोतों को देते थे। लेकिन बेटियों को कुछ नहीं देती थी। सामाजिक जीवन में समभावना बहुत जरूरी है। बच्चे चाहे वह बेटा हो या बेटी ईश्वर का वरदान है। इसलिए दोनों को समान दृष्टि से देखना चाहिए। समाज के विकास के लिए यह समभावना अनिवार्य है।

बेटी के जन्म से दुखी परिवार का चित्रण भी उपन्यास में देखने को मिलता है। जब टीनू की माँ को तीसरी बेटी हुई थी तब माँ उस रात में रोती- रोती सोयी थी । यह बात बाद में माँ ने खुद टीनू से बतायी। माँ एक बेटा ही चाहती थी क्योंकि परिवारवालों के मन में यह विचार था कि बेटे से वंश चलता है। इसलिए बेटे के जन्म से माँ का जीवन सफल हो जाएगा । बेटी के जन्म से नानी भी दुखी थी। उनके मन में यह विचार था कि यदि बेटा हो जाय तो उनकी बेटी की जान बच्चा पैदा करने से छूट जाएगी। दरअसल ये दोनों कभी यह नहीं सोचती हैं कि परिवार को आगे बढ़ाने की हिम्मत बच्ची में भी है।

वह सबकुछ सीख सकती है,काम कर सकती है, पैसा और प्रगति ला सकती है। इसके द्वारा मृणाल पांडे यह कहना चाहती है कि हमारे समाज में व्याप्त बेटा-बेटी भेदभाव का और एक कारण स्वयं नारी ही है क्योंकि वह हमेशा यह सोचती है कि केवल पुरुष से ही घर - परिवार संभल सकता है। स्त्री को यह असाध्य है। हमारे समाज में व्याप्त इस विचार को खतम करने के लिए पहले नारी को अपनी शक्ति पर विश्वास करना चाहिए और आत्मनिर्भर रहना चाहिए।

बेटे के जन्म से एक परिवार कितना संतुष्ट होते हैं इसका प्रमाण है मृणाल पांडे के हमका दियो परदेस के हमारे भैया' नामक अध्याय। यह अध्याय नवजात बच्चे के प्रति एक मासूम बालिका के आत्मरोष का साक्षी है । टीनू की माँ ने एक बच्चे को जन्म दिया था । परिवार के सब खुशी में थे । लेकिन टीनू यह सोचती है कि "जो भी हमारा इंतज़ार कर रहा है , उसके लिए मेरे मन में कोई खास हवस नहीं है । उससे मिलने को लालायित होने की कोई तुक नहीं।"[4] इस सोच के द्वारा यह व्यक्तहोता है कि उसके मन में अपने भाई के प्रति कोई खास प्रेम नहीं है । इसमें भाई का कोई कसूर नहीं है । पर इसका मूल कारण पूरा परिवार है क्योंकि छोटी उम्र से वह यह सुनकर बड़ा हुआ कि बेटा ही सबुकछ है। इसलिए पूरे परिवार का लाड़ - प्यार, स्वादिष्ट भोजन , खिलौना सबकुछ बेटे को ही मिलनेवाला है। बेटियों को उपेक्षित सामग्रियों से संतुष्ट रहना पड़ता है । इसके अलावा सब बढ़ा - चढ़ाकर बेटे के बारे में कहते हैं । यह सुनकर टीनू सोचती है कि क्या परिवार में उसका कोई स्थान नहीं है? इसलिए बच्चा पैदा होने की खुशखबरी सुनकर उसके मन में नफ़रत आती है। जिस परिवार में नारी का कोई स्थान नहीं है, पुरुष ही सबकुछ है उस परिवारवालों के प्रति नारी का जो विद्रोह है वह विद्रोह ही इस नवजात शिशु से टीनू दिखाती है। बेटा - बेटी का भेदभाव एक बच्ची के मनोभाव पर कितना दबाव डालते हैं यह प्रसंग इसका उदाहरण है। इसके द्वारा मृणाल पाण्डे यह कहना चाहती है कि स्त्री और पुरुष एक दूसरे के प्रतिद्वंद्वी नहीं ,एक दूसरे के पूरक है। इसलिए यह भेदभाव मिटाकर, समभावना को महत्व देना ही देश की प्रगति के लिए गुणकारी है।

समाज में लड़की का अधिक हँसना और

घूमना मनाह है। टीनू और दीनू बाबू जी के चुटकुले और कहानियों पर ज़ोर से हँसते हैं तो माँ नाराज़ होकर कहती है कि "लड़कियों का अति का हँसना ठीक नहीं होता।"[5] इसके द्वारा मृणाल पांडे यह कहना चाहती है कि लड़कियों को किसी भी कार्य करने की स्वतंत्रता नहीं देती है। यहाँ तक कि हँसने का भी।

लड़कियों की पढ़ाई भी जरूरी नहीं है। उसकी राय भी नहीं पूछती है। सब सहन करने की विद्या ही उसे घरवाले सिखाते हैं। यह एक घर की लड़की की अवस्था नहीं, पूरे समाज की लड़कियों की अवस्था है। यह अवस्था तो ज़रूर बदलना ही चाहिए ताकि नारी को आगे बढ़ना है। यहाँ टीनू और दीनू भी माँ के इस विचार से सहमत नहीं होती है और खेल में लगी रहती हैं।

बच्चों के भोजन कार्य में भी बेटा - बेटी का भेदभाव दिखाई देता है। नानी के घर में उपवास लेनेवालों के लिए विशेष फलाहारी भोजन पकाते थे। टीनू और अनु उपवास नहीं लेते थे । पर दोनों यह भोजन बहुत पसंद करते थे। अनु अपने मन पसंद भोजन खा सकता था क्योंकि वह पोत्ता था। लेकिन टीनू को नातिन होने के कारण यह भोजन नहीं मिलता था। यहाँ टीनू का आग्रह बहुत छोटा है। बडे लोग आसानी से पूरा कर सकते थे।

फिर भी वे इसके लिए तैयार नहीं होते हैं। इसके बदले वे इस छोटी लड़की के सामने अपना शर्त रखते हैं कि भोजन चाहिए तो उपवास करो। इससे यह व्यक्त होता है कि हमारे परिवार के सारे नियम स्त्री के लिए बनाए गए हैं। पुरुष को यह बाधक नहीं है।

नानी के परिवारवाले लड़िकयों को ज़्यादा पढ़ाने के पक्ष में नहीं थे। उनका कहना है कि "लड़कियों को आखिर रोटियाँ बेलने और दालभात उबालने भर की अक्ल की ही ज़रूरत पड़नेवाली हुई।"[6]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 'हमका दियो परदेस' की टीनू चारों ओर के लड़का - लड़की भेदभाव के बारे में अपने अनुभव के द्वारा समझाती है। छोटी लड़की होती हुई भी वह इसका विरोध करती है साथ ही साथ अपने भविष्य के बारे में चिंतित है। इसलिए अपनी पढ़ाई से कभी पीछे नहीं हटती है। उसकी सोच बड़ों के जैसा है और वह बचपन से लड़कों के समान अधिकार के साथ जीना पसंद करती है । इसप्रकार अलग तरीके से सोचनेवाली टीनू उपन्यास में नारी चेतना की प्रतीक के रूप में आती है। पुरुषों को भी आज के ज़माने में समाज की गति के अनुसार सोचना चाहिए क्योंकि समाज की प्रगति के लिए पुरुष के समान स्त्री का शिक्षित होना और काम करना आदि की ज़रूरत होती है। टीनू जैसी लड़कियों का नया सोच समाज के लिए हितकारी है।

सहायक ग्रंथसूची

1. महिला उपन्यासकारों की नारी : प्रगति एवं पीड़ा के आयाम - आचार्य डॉ. हरिशंकर दुबे - पृ सं -139
2. हमका दियो परदेस मृणाल पांडे, पृ सं -20
3. हमका दियो परदेस मृणाल पांडे, पृ सं -22
4. हमका दियो परदेस मृणाल पांडे, पृ सं -83
5. हमका दियो परदेस मृणाल पांडे, पृ सं -46
6. हमका दियो परदेस मृणाल पांडे, पृ सं -45

शोध निदेशक :

डॉ.उषाकुमारी के पी

प्रोफेसर, हिंदी विभाग

महात्मा गांधी कॉलेज, तिरुवनंतपुरम।

शोध छात्रा, हिंदी विभाग

महात्मा गांधी कॉलेज, तिरुवनंतपुरम

सैकड़ों हुनरमंद हाथों की गरिमा

ऐश्वर्या अनिलकुमार

भारत के पुराने इतिहास पर दृष्टि डाले तो युवा कवि अनुज लुगुन के समान हम भी बोल उठेंगे- 'अनायास ही स्मरण हो उठते हैं, सैकड़ों हुनरमंद हाथ।' भारत के आदिवासी मूल निवासी माने जाते हैं। बाहरी शक्तियों से किए गए उनके संघर्षों की लंबी परंपरा है। उनका संघर्ष केवल ब्रिटिश शासन के खिलाफ ही नहीं था, बल्कि स्थानीय राजाओं, ज़मींदारों, महाजनों, पुलिस प्रशासन और ईसाई मिशनरियों से भी था। बाहरी लोगों ने आदिवासियों की स्वतंत्र सामाजिक व्यवस्था में आधिपत्य स्थापित करने का प्रयास किया। जब बाहरी शक्तियाँ जल, जंगल और ज़मीन पर आधिपत्य करने लगीं, तब आदिवासी अधिक जागरूक हो गए। आदिवासी लोग जल, जंगल और ज़मीन का उपयोग मात्र जीवन की मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति केलिए करते थे। कभी भी प्रकृति पर आधिपत्य स्थापित करने की कोशिश उन्होंने नहीं की। जंगल उनकी अस्मिता और पहचान का प्रतीक था। जंगल पर होनेवाले हर आघात के विरुद्ध खड़े होना आदिवासियों का नैसर्गिक स्वभाव रहा। इसके पीछे आदिवासियों के जीवन-दर्शन, रीति-रिवाज़, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अभिव्यक्ति धार्मिक अनुष्ठान आदि विद्यमान हैं। स्वतंत्रता-प्राप्ति से पहले आदिवासी बाहरी शक्तियों के विरुद्ध हथियार लेकर आंदोलन चलाते थे। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद सामाजिक न्याय मिलने के लिए वे हथियार के रूप में अपनी तूलिका चलाते हैं। विशेषतः झारखंड के आदिवासी लोग इसमें अग्रगण्य हैं। आज आदिवासी लोग अपनी मूल भाषा में रचना करने के साथ-साथ हिंदी, अंग्रेज़ी आदि भाषाओं में भी तूलिका चलाकर अपनी संवेदना को भारत में ही नहीं, विश्वभर पहुँचाने की कोशिश करते हैं, ताकि लोगों के रुख़ बदले और वे भी आदिवासियों का साथ दे सके। आदिवासी इलाके में प्रवेश करने वाले अंग्रेजों के विरुद्ध समय-समय पर कई आंदोलन चलाए गए। आदिवासी आंदोलनों की शुरुआत अठारहवीं शताब्दी के 'पहाड़िया विद्रोह' से माना जाता है। झारखंड के जंगलमहल क्षेत्र के भूमिज आदिवासियों ने अपने जंगल और ज़मीन के बचाव के लिए ईस्ट इंडिया कंपनी के शोषण के खिलाफ किए गए चुआड़ विद्रोह, झारखंड पर शासन स्थापित करने के अंग्रेज़ों के प्रयास से असंतुष्ट होकर किए गए 'चेरो विद्रोह,' 'ढाल विद्रोह' आदि इस दृष्टि में महत्वपूर्ण हैं।

आदिवासी विद्रोह की परंपरा में अब तक के ज्ञात सबसे बड़ा आदिवासी जन-नायक है तिलका मांझी। उनके द्वारा चलाया गया आंदोलन 'तिलका माँझी विद्रोह' के नाम से जाना जाता है। तिलका मांझी कम उम्र में ही ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध लड़े थे। 1771 से 1784 तक तिलका मांझी ने पहाड़िया आदिवासियों को इकट्ठा करके कंपनी सेना से विद्रोह किया था। इसके अलावा अंग्रेज़ों के विरुद्ध घटित सबसे लंबे विद्रोहों में से एक है 'तमाड़ विद्रोह'। तमाड़ विद्रोह 1782 से शुरू होकर 1821 तक चलता रहा। ब्रिटिश सरकार का खर्च, शाही खर्च और अन्य दबावों से निपटने के लिए छोटानागपुर के राजाओं ने आदिवासी ज़मीनों के पट्टे गैर-आदिवासी ठेकेदारों को दिया। ऐसे बाहरी लोग आदिवासियों पर निरंतर अत्याचार करते रहे। ज़मींदारों व ठेकेदारों की घुसपैठ, ज़बरन वसूली, अपनी ही ज़मीन से बेदखली आदि से तंग आकर तमाड़ क्षेत्र के मुंडाओं ने विद्रोह शुरू किया।

1792 में मालाबार क्षेत्र श्रीरंगपट्टणम की संधि के द्वारा अंग्रेज़ों को सौंप दिया गया था। तलक्कल चंदु के नेतृत्व में कुरिचियों ने पष़शि विद्रोहों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। पष़शि विद्रोह के दमन के बाद, अंग्रेजों ने कुरिचियों को पकड़कर गुलाम बनाने की कोशिश की। कुरिचियों ने मार्च 1812 में रामन नम्बी के नेतृत्व में विद्रोह किया। वायनाड् के सभी हिस्सों में यह विद्रोह फैल गया। उन्होंने ब्रिटिश सेना पर हमला किया। इसे समाज के औपनिवेशिक शोषण के विरोध करनेवाले विभिन्न वर्गों का समर्थन प्राप्त हुआ था।

अंग्रेजों के आगमन से प्रशासन में आए परिवर्तन, ज़मींदारों के शोषण, राजस्व वसूली आदि समस्याओं से असंतुष्ट भीलों ने आंदोलन चलाया। भीलों के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप करने के कारण उन्होंने अंग्रेज़ों के विरुद्ध विद्रोह किया। अंग्रेज़ों की शासन-व्यवस्था से त्रस्त स्थानीय 'हो' आदिवासी भी लरका आदिवासियों के साथ विद्रोह में जुड़ गए थे। 1831 में हुए कोल विद्रोह में रांची और सिंहभूम के मानकी, मुंडा, हो, उरांव, पलामू के चेरो और खरवारों ने भी विद्रोह में सहभागिता ली। आंदोलन एक राष्ट्रीय संघर्ष का स्वरूप ले लिया था। 1817 में कंपनी सरकार द्वारा लागू की गई शासन व्यवस्था भूमिजों की परंपरागत सामाजिक व्यवस्था को प्रभावहीन बनाता जा रहा था। महाजनों के भारी सूद के कारण भूमिज आदिवासी कंपनी सरकार और स्थानीय प्रशासन से भी नाराज़ थे। 1857 के प्रथम युद्ध के बाद ब्रिटिश सरकार ने निःशस्त्रीकरण अधिनियम बनाया। कंपनी सरकार ने सभी भारतीयों को समझाकर या डराकर उनके हथियार जब्त करने का फैसला किया। बेदा समुदाय ने भी निडर होकर ब्रिटिश आक्रमण का प्रतिरोध किया।

1879 में विजागपट्टणम जिले के रंपा क्षेत्र में पहाड़ी जनजातियों द्वारा ब्रिटिश प्रशासन के खिलाफ विद्रोह करते हुए पुलिस स्टेशनों पर हमला किया था, जिसे **रंपा विद्रोह** के नाम से जाना जाता है। अंग्रेज़ रेलवे और जहाज़ों के निर्माण के लिए इस वन-भूमि पर अधिकार स्थापित करना चाहते थे। पारंपरिक खेती पर निर्भर रहने वाले आदिवासियों ने इसके खिलाफ आवाज़ उठाई। कंपनी सरकार, स्थानीय जमींदार, महाजन-साहुकार के शोषण, ज़मीन पर कब्ज़ा, बलात्कार, लूट-पाट और उत्पीड़न से त्रस्त संथालों ने 1855 में इन अत्याचारों के ख़िलाफ़ हुलगुलान किया था। 'संथाल हूल' नाम से प्रसिद्ध संथाल विद्रोह का नेतृत्व मुख्य रूप से सिद्धू-कान्हू ने किया था।

सरकार ने 1789 की सामंती व्यवस्था के तहत आदिवासी मुंडाओं की 'खुंटकट्टी' व्यवस्था में परिवर्तन करते हुए व्यक्तिगत भू-स्वामित्व व्यवस्था लागू की। 'खुंटकट्टी' व्यवस्था के अनुसार मुंडा समुदाय जंगलों को साफ करके उसे खेती के लिए उपयुक्त बना सकते थे। उस भूमि पर मुंडा आदिवासियों का स्वामित्व माना जाता था। कोल विद्रोह में शामिल होकर मुंडाओं ने शासन के प्रति अपना असंतोष प्रकट किया था। बाद में 1895 में मुंडा विद्रोह की बागडोर बिरसा मुंडा ने संभाला। ईसाई मिशनरियों के भ्रम और अंग्रेज़ों के शासन व शोषण से आदिवासियों को मुक्ति दिलाने के लिए बिरसा मुंडा ने सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक स्तर पर आंदोलन चलाया।

झारखंड आंदोलन पृथक झारखंड राज्य के निर्माण के लिए हुआ था। 1920 ई. में शुरू होकर सन् 2000 तक आंदोलन चलता रहा। 15 नवंबर 2000 को देश के 28 वें राज्य के रूप में झारखंड का विधिवत गठन हुआ। मुंडा सरदारों के नेतृत्व में सरदार आन्दोलन तीन चरणों में 1858 से 1895 तक लगभग 35 वर्षों तक ज़ारी रहा। 1845 में छोटानागपुर क्षेत्र में ईसाई मिशनरियों का प्रवेश हुआ। इससे आदिवासियों की भूमि-संबंधी समस्याएँ अधिक जटिल हो गईं। 1858-1881 तक इसका पहला चरण था, जो भूमि आंदोलन नाम से आदिवासी ज़मीन से जुड़ी समस्याओं को केंद्र में रखकर चलाया जाता था। 1881 से 1890 ई तक के दूसरा चरण को 'पुनरुत्थानवादी चरण' नाम दिया गया था, इसमें मुंडाओं ने पुराने मूल्यों की पुनःस्थापना पर ज़ोर दिया। 1890 से में मुंडाओं ने परंपरागत हथियारबंद तरीके अपनाए। यह सरदार आंदोलन का तीसरा चरण है। सरदार विद्रोह लगभग 35 वर्षों तक चलता रहा। बाद में बिरसा मुंडा के विद्रोह में इसे शामिल कर लिया। खेरवार आंदोलन 1874 ई. में झारखंड में हुआ था। आंदोलन का नेतृत्व भागीरथ मांझी ने किया था। उन्होंने धार्मिक ढंग से सुधारवादी आंदोलन चलाने का प्रयास किया। यह आंदोलन मुख्य रूप से उरांव आदिवासियों का आंदोलन है। कोल, तमाड़ और भूमिज विद्रोह में भी उराँव आदिवासियों ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। बड़ी संख्या में लोग आंदोलन से जुड़ते रहे।

समय के साथ आदिवासी समाज ने अपने प्रतिरोध का रास्ता बदलकर साहित्य के रास्ते को अपना लिया। अपने मोहभंग, अस्तित्व संबंधी संकट और सांस्कृतिक-

सामाजिक चुनौतियों को साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त करने लगे। सदियों के आदिवासी आंदोलनों से प्रेरणा लेकर साहित्य रचनाएँ करते हुए उन्होंने उपन्यास, कहानी, कविता, नाटक और अन्य साहित्य विधाओं के माध्यम से अपने हक के लिए प्रतिरोध को ज़ारी रखा। सुप्रसिद्ध बंगला उपन्यासकार महाश्वेता देवी का 'जंगल के दावेदार' उपन्यास और अनिता रश्मि की कहानी 'धरती अबुआ बिरसा' में बिरसा मुंडा के जीवन, परिवार और संघर्षों से संबंधित कई तथ्यों के साथ बिरसा मुंडा की मृत्यु से संबंधित यथार्थ को भी सामने रखा गया है। हृषिकेश सुलभ द्वारा लिखित नाटक 'धरती आबा' आदिवासी वीर नायक बिरसा मुंडा के जीवन पर आधारित है। बिरसा मुण्डा की याद में उनके प्रति गहरी संवेदना व्यक्तकरते हुए दुलाय चंद्र मुंडा ने 'बिरसा भगवान' शीर्षक कविता लिखी है। राकेश कुमार सिंह ने सिदू-कान्हू द्वारा चलाए गए 'संथाल हुल' को आधार बनाकर 'जो इतिहास में नहीं है उपन्यास तथा तिलका मांझी के विद्रोह को पृष्ठभूमि में रखकर 'हुल पहाड़िया' उपन्यास लिखा है। राकेश कुमार सिंह के महाअरण्य में गिद्ध और विनोद कुमार के 'रेड जोन' उपन्यासों में अलग झारखंड राज्य गठन और राजनीतिक एवं सामाजिक आंदोलनों का यथार्थ चित्रण मिलता है। विनोद कुमार की कहानी 'हूल' में संथाल विद्रोह और अनिता रश्मि की कहानी रघुआ टाना भगत में टाना भगत आंदोलन का ज़िक्र किया गया है। अश्विनी कुमार पंकज के 'मरङ गोमके जयपाल सिंह मुंडा' जीवनी में जयपाल सिंह मुंडा की जिंदगी और झारखंड में हुए सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक घटनाक्रमों को यथार्थता के साथ दर्शाया गया है।

स्वतंत्रता के बाद भी जल, जंगल और ज़मीन को लेकर आदिवासी शोषण निरंतर चलता रहा। विदेशी शासकों के शोषण से तो छुटकारा मिल चुका था। लेकिन औद्योगीकरण और देशी शासकों के अत्याचारों से आदिवासियों को संघर्ष करना पड़ा था। बढ़ते औद्योगीकरण और विकास के कारण विस्थापन, खेत और ज़मीन पर कब्ज़ा, आजीविका का नुकसान, पर्यावरण प्रदूषण आदि के कारण आदिवासियों को अपनी ज़मीन और पुश्तैनी धंधा छोड़कर कोयला खदानों तथा चाय बागानों में मज़दूरी करना पड़ा। उनके साथ हुई उपेक्षा और उत्पीड़न को साहित्य का हिस्सा बनाकर वे अपने हक के लिए लड़ाई कर रहे हैं। झारखंड संथाल परगना की कोयला खदानों में काम करनेवाले आदिवासी मज़दूरों के जीवन को उजागर करते हुए संजीव ने 'धार' उपन्यास के माध्यम से आदिवासी ज़मीन की समस्याएँ, अवैध खनन, पूंजीवादी व्यवस्था आदि की ख़ामियों को चित्रित किया है। झारखंड के जिला पलामू के भूमिगत आंदोलनों के आधार पर राकेश कुमार सिंह ने 'जहाँ खिले है रक्तपलाश', पठार पर कोहरा आदि लिखा है। नक्सलवाद की खतरनाक स्थिति का चित्रण अनिता रश्मि की 'सरई के फूल कहानी में दर्शाया गया है। औद्योगीकरण के कारण परम्परागत उद्योगों का लुप्त होना, ज़मीन अधिग्रहण, दूसरे देशों में विस्थापित आदिवासियों की पहचान-अस्मिता आदि को विषय बनाकर लिखी गई रचनाओं में प्रमुख हैं - रोज केरकेट्टा की कहानी 'बिस्बार गमछा', अश्विनी कुमार पंकज की कहानी 'फेट्करी' और 'इस सदी के असुर' आदि। आदिवासी संघर्षों व उलगुलानों के बारे में अनुज लुगुन ने 'अघोषित उलगुलान' कविता में ज़िक्र किया है।

चाय बागानों और खदानों में काम करने के लिए विवश आदिवासी-जीवन का चित्रण करते हुए वाल्टर भेंगरा 'तरुण' की 'कालापानी', 'परिधि के घेरे में' और मंगल सिंह मुंडा की 'धोखा' आदि कहानियाँ लिखी गई हैं। दुलाय चंद्र मुंडा की 'असम के भाईयों के लिए' शीर्षक कविता में असम के चाय बागानों में मज़दूरी कमाने के लिए गए आदिवासियों के जीवन का चित्रण मिलता है। ग्लोरिया सोरेंग के 'बग़ान में' नाटक में ईंट-भट्ठे में काम करनेवाले आदिवासियों के जीवन संघर्ष, बेरोज़गारी आदि का चित्रण है। 'एक कविता सहारनपुर' और 'अबुआः दिशुम वालों के बीच में' कविताओं में अनुज लुगुन ने बदलती आदिवासी जीवन-शैली, पुरखों की याद, आदिवासी संघर्ष और इतिहास को अंकित किया है।

विकास के दौर में बुनियादी ज़रूरतों से बेदखल किए जानेवाले आदिवासियों की हक के लिए साहित्य द्वारा

आंदोलन चलाया जा रहा है। रणेंद्र के 'ग्लोबल गाँव के देवता' और 'गायब होता देश', महुआ माझी का 'मरंग गोडा नीलकंठ हुआ' आदि उपन्यासों में औद्योगिकीकरण के दौर में अपने अस्तित्व को बचाने के लिए संघर्षरत आदिवसियों के जीवन की अभिव्यक्ति हैं। रोज़ केरकेट्टा की 'फिक्स्ड डिपॉजिट' आदिवासी विस्थापन और पलायन की समस्याओं से जुड़ी हुई कहानी है। अश्विनी कुमार पंकज के उपन्यास 'माटी माटी अरकाटी' में मारिशस में विस्थापित आदिवासियों के दुख-दर्द का ख्बरू चित्रण है। रोज़ केरकेट्टा की 'जिद' कहानी और कृष्ण मोहन सिंह मुंडा की 'लीलमनी की ड्यूटी' कहानी गैर-आदिवासी समाज के बीच अपनी जगह बनाने के लिए संघर्षरत आदिवासी जीवन को आधार बनाकर लिखी गई हैं। गाँवों से शहर जानेवाले आदिवासियों की नई पीढ़ी की त्रासदियों को आधार बनाकर रोज़ केरकेट्टा की 'बड़ा आदमी' और वाल्टर भेंगरा 'तरुण' की 'संगी', 'लसा', 'मक्कड़जाल' आदि कहानियाँ लिखी गईं हैं।

वाल्टर भेंगरा 'तरुण' की कहानी 'सूखा डंटल' में आदिवासियों पर पुलिस या शासकवर्ग द्वारा होनेवाले अत्याचार, पत्थलगड़ी के नाम पर दोषारोपण, खदानों के निर्माण आदि को दर्शाया गया है। अश्विनी कुमार पंकज की कहानी 'जहाँ फूलों का खिलना मना है' झारखंड की राजनीति और पत्रकारिता को केन्द्र में रखाकर लिखी गई है। अनुज लुगुन की कविता 'बाघ और सुगना मुण्डा की बेटी' आदिवासी इतिहास, संस्कृति, संघर्ष की परंपरा और आदिवासियत जैसे कई पहलुओं पर एक सघन चिन्तन प्रस्तुत करती है। आदिवासी कविताओं में प्रतिरोध का स्वर मुखर है। दुलाय चंद्र मुंडा की 'डोम्बरी पहाड़ पर', 'ऐसा', 'ओ आदिवासी' आदि कविताओं में आदिवासी शोषण के विरुद्ध प्रतिरोध का चित्रण है। आदिवासियों को अपना इतिहास खुद लिखने की आवश्यकता को व्यक्तकरते हुए महादेव टोप्पो ने 'रचने होंगे ग्रन्थ' शीर्षक कविता लिखी है। इनके अलावा एलिस एक्का, वंदना टेटे, जसिंता केरकेट्टा, विहाग वैभव, पार्वती तिर्की आदि भी अपनी तूलिका से संघर्ष को ज़ारी करते हैं।

निष्कर्षतः उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक सरकारी वन-नीति के तहत जंगल में प्रवेश, जंगली उत्पादों का प्रयोग, यातायात आदि पर कई तरह के रोक लगा दिया गया। अकाल के कारण आदिवासियों की हालत बदतर होती गई। आदिवासियों को लड़ाकू, जंगली, नक्सल आदि कहकर उन पर मुहर लगाया गया। आदिवासी आंदोलनों को दबाने के लिए नाकाबंदी करके बाहरी दुनिया और आदिवासियों के बीच के संबंध को तोड़ने की कोशिश की गई। बाहर से लोग जंगलों में प्रवेश करने पर रोक लगा दिया गया। क्रूरतापूर्ण दमन के बाद भी आदिवासियों ने अपने अस्तित्व और संस्कृति को किसी भी शासक वर्ग के सामने आत्मसमर्पण नहीं किया। स्वतंत्रता के बाद भी आदिवासी उपेक्षा और उत्पीड़न की शिकार है। विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक बदलावों से गुज़रने तथा बाहरी लोगों के प्रभाव से आदिवासी समाज आर्थिक और सांस्कृतिक रूप से बदतर होता गया। उन्हें बाहर लाने और अपनी मूल संस्कृति की ओर लौटने की प्रेरणा देने का काम साहित्यकार करते हैं। आदिवासी लोग साहित्य के माध्यम से आज भी सत्ता के खिलाफ संघर्ष करते हैं। रचनाओँ के माध्यम से आदिवासी लोगों को अपने अधिकारों के लिए लड़ने की प्रेरणा मिलती है। शोषण के प्रति आक्रोश व्यक्तकरने तथा अपनी स्थिति की सही जानकारी दुनिया भर के लोगों तक पहुँचाने में उनको सफलता प्राप्त हो रही है। आशा करें कि आगामी भविष्य में दुनिया उनके महत्व को पहचान लेगी और उनकी स्थिति सुधार जाएगी। आज दुनिया आदिवासी जीवन दर्शन को आदर्श मानकर जीवन बिताने की घोषणा के इंतज़ार में है।

शोध निरीक्षक
डॉ.सिंधु.टी.ऐ.
असोसियट प्रोफसर
हिंदी विभाग
सेंट. पीटेर्स कॉलेज
कोलंजेरी

शोधछात्रा, हिंदी विभाग
महाराजास कॉलेज, एरणाकुलम

तीसरा आदमी उपन्यास में स्त्री का मनोवैज्ञानिक पक्ष

गीतु दास

शोध सार - नई कहानी आंदोलन के प्रमुख लेखक कमलेश्वर ने अपने उपन्यासों में बदलते स्त्री-पुरुष या पति-पत्नी के संबंधों का वर्णन किया है। फ्रायड के मनोविश्लेषण सिद्धांत के जरिए व्यक्तिमन के अचेतन की स्थिति, द्वन्द्व, शंका, अहं, हीन भावना एवं डर का सफल अंकन कमलेश्वर ने किया है। तीसरा आदमी उपन्यास में लेखक ने सामाजिक मानवीय और व्यक्तिगत परिस्थितियों के बीच नरेश तथा चित्रा के टूटते संबंधों को व्यक्त किया है। परिस्थितिवश पति-पत्नी को अतृप्त इच्छाएँ दबाकर जीने के लिए विवश होना पडता है। यही अतृप्त इच्छाएँ अचेतन में दबकर कुण्ठा का रूप धारण करती है। पति का तिरस्कार भी तीसरे व्यक्तिके करीब आने का एक वजह बन जाता है। इस प्रकार इस लेख में इन समस्याओं के साथ स्त्री का मनोवैज्ञानिक पक्षपर भी प्रकाश डाला गया है।

बीज शब्द - नारी मनोविज्ञान, अटूट संदेहवृत्ति, अकेलापन, संवादहीनता, शंका पारिवारिक विघटन, आंतरिक द्वन्द्व, घृणा, अतृप्त इच्छाएँ ।

भारतीय दर्शन में तो स्त्री की लोकोत्तर गरिमा के दर्शन होते हैं। भगवान मनु ने सृष्टि के प्रारंभ में स्त्री; नारीत्व की उत्पत्ति ब्रह्मा द्वारा अपने शरीर के दो सग भाग करके आधे को पुरूष रूप में और आधे को स्त्री रूप में परिवर्तित करने से बताई है । स्त्री को वैदिक आम्नाय के सिद्धांतानुसार प्रथम स्थान दिया गया है। इसी प्रकार वेदों का प्रादुर्भाव जिस गायत्री से हुआ है, वह भी नारी जाति का ही प्रतीक है । 'नारी' शब्द वैदिक नहीं है। नई   से बना है।

साहित्य और समाज दोनों एक दूसरे को प्रभावित परिमार्जित और संचलित करते है। किसी भी देश के साहित्य में युगीन सामाजिक मान्यताएँ, समस्याएँ, नितियों, रीतियों एवं उत्कर्ष के प्रतिबिंब मिलते है। आज नारी सारे बंधनों को तोडकर मुक्त होकर स्वावलंबी, आत्मनिर्भर जीवन जीने की कोशिश कर रही है। नारी को आज समाज, जीवन में अनेक चुनौतियों का सामना करने की ताकत आ गयी है। कभी उसका संस्कारशील मन का हार मानना और फलस्वरूप उसे धोखा खाना पडता है, कइ घुटन, संत्रास, पीड़ा और कुंठा के कारण उस अकेला जीवन जीना पडता है ।

स्वतंत्योत्तर काल में सामज सुधारकों ने युगों से पीडित, शोषित तथा उपेक्षित नारी को मानवीय अधिकार दिलाने के लिए रूढिवादी मान्यताओं का विरोध किया। अंग्रेजी के संपर्क में आने से भारतीय सभ्यता में पाश्चात्य विचार आए। परिवर्तन आधुनिकता का बोध, समता, स्वतंत्रता, बंधुत्व इन सभी बातों का प्रभाव भारतीय चेतना पर पडा और नारी में परिवर्तन हुआ। पश्चिम में चल रहे नारी आंदोलनों का प्रभाव अप्रत्यक्ष रूप से हमारे देश के समाज सुधारकों पर पडा और वे नारी की दशा के बारे में विचार करने लगे।

स्वातंत्योत्तर हिन्दी उपन्यासकारों में नारी की मनोवैज्ञानिक स्थिति स्त्री-पुरुष संबंधों को व्यक्तकरने अनेक साहित्यकार उभर आये जिसमें कमलेश्वर का स्थान उल्लेखनीय है।

कमलेश्वर का तीसरा आदमी सहज शैली में लिखा गया उपन्यास है । इस उपन्यास में स्त्री-पुरूष संबंधों के बीच तीसरे आदमी की उपस्थिति को विशिष्ट

शैली माना गया था और कथ्य का महत्वपूर्ण अंग है। तीसरा आदमी पति-पत्नी के बीच की उपस्थिति प्राप्त है । 'तीसरा आदमी' उपन्यास निम्न मध्यवर्गीय परिवारों की कुंठाओं, हताशाओं, आर्थिक असमर्थताओं और अटूट संदेह वृत्ति से उत्पन्न विफल जीवन की कथा है। यह आत्मकथा शैली और सांकेतिक भाषा में लिखा गया है । यह उपन्यास कश्बाई और महानगरीय जिंदगी की एक जुडती हुई कड़ी के रूप में सामने आता है। तीसरा आदमी की उपस्थिति को लेखक ने सामाजिक आर्थिक जीवन से जोडकर विशिष्ट बना दिया है। यह उपन्यास मध्यवर्गीय परिवार के दांपतत्य जीवन के उँच-नीच और असहज संबंधों का दस्तावेज माना जाता है।

प्रस्तुत उपन्यास प्रथम पुरुष 'मैं' की शैली में लिखा हुआ है। प्रथम पुरुष 'मैं' अपनी पत्नी की एसी कहानी कहता है, जिसके बीच एक तीसरा आदमी है। उस तीसरे आदमी तथा पत्नी के अंतरंग प्रसंगों का खुला वर्णन 'मैं' अपने माध्यम से नहीं, बल्कि संकेतों और जो कुछ वह देखता है, उसके आधार पर करता है। इस विशेष स्थिति के कारण 'मैं' के मन का संदेह एवं आंतरिक द्वन्द्व, उसके भीतर के द्वेष तथा घृणा के भाव सामने आते हैं।

'तीसरा आदमी' उपन्यास में महानगरीय जीवन की यांत्रिकता, कोलाहल, भीड तथा व्यक्तिका आकेलापन एवं संवादहीनता की स्थिति का चित्रांकन हुआ है। इस उपन्यास की कथा पति-पत्नी के संबंध के बीच तीसरे आदमी की अनुभूति ही संपूर्ण उपन्यास में व्याप्त रहती है। शादी, नौकरी, ट्रान्सफर, पति-पत्नी और बच्चे, इन सब के बीच वही तीसरा आदमी सदैव छाया रहता है। आज के व्यस्त जीवन में यह असंभव ही है कि व्यक्ति रोजी-रोटी पाने के झंझट के अलावा अन्य सामाजिक स्थितियों के प्रति जागृत रहे। इस उपन्यास के पात्रों में अहम् की प्रबलता इतनी तीव्र है कि पात्र इसकी रक्षा के हेतु अपना परिवारिक जीवन सन्देह तले बिताते है। उनके अहम् का अंत परिवार के विधा में होता है।

कमलेश्वर ने अपने उपन्यासों में नारी की क्या सोच है और वह समाज में किस प्रकार से जीवन व्यतीत करती है, उसके हर पक्ष का वर्णन किया है। समाज में नारी किस प्रकार की नज़रों से देखा जाता है। समाज में रहने नारी को किस प्रकार रहने के लिए मजबूर होना पडता है, यह सब बातों का वर्णन कमलेश्वर के उपन्यासों में मिलता है। उनके उपन्यासों में नारी मनोविज्ञान को चार प्रकारों मे बाँटा जा सकता है?- 1. सामाजिक पक्ष 2. धार्मिक पक्ष 3. राजनीतिक पक्ष 4.आर्थिक पक्ष।

तीसरा आदमी उपन्यास वर्तमान आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियों के आधार पर मध्यवर्गीय परिवार का चित्रण है। उपन्यास में एक तरफ संकट के भोज से संघर्ष करता तथा इस सबके बीच से अपनी पहचान एवं व्यक्तित्त्व की सार्थकता की खोज करता नायक तो दूसरी ओर परंपरागत रूढियों से मुक्तहोकर स्वतंत्र जीवन बिताना चाहती नायिका। महानगर पहुँचकर वहाँ के बदले हुए परिवेश में आर्थिक अभाव, बेगानेपन के घेरे में फँसे दम घुटते एवं जीने को विवश मध्य वर्गीय परिवार का चित्र अंकित किया गया है।

तीसरा आदमी उपन्यास का नायक नरेश और नायिका उनकी पत्नी चित्रा। तीसरा आदमी नरेश के रिश्ते का भाई सुमंत है। नरेश इलाहाबाद में काम करता है लेकिन उसे इलाहाबाद छोटा शहर लगता है और वह दिल्ली जैसा महानगर में काम करना चाहता है। इसी कारण वह तबादला दिल्ली करवा लेता है। नरेश अपने पत्नी चित्रा के साथ दिल्ली आजाता है। दिल्ली जैसे महानगर की स्थिति इलाहाबाद से काफी भिन्न होती है। आर्थिक अभाव,

आवास तथा अन्य सुविधाओं के अभाव में उन्हें नरेश की रिश्ते का भाई सुमंत के साथ रहना पडता है। सुमंत कुतुब रोड पर आराम नगर के एक कमरेवाले घर में रहता है। उन्हें भी सुमंत के साथ रहने के लिए विवश होना पडता है और इसी विवशता उनके जीवन का अभिशाप बन जाती है।

नरेश, चित्रा और सुमंत के एक ही कमरे में रहने के कारण चित्रा और नरेश के बीच अनेक प्रकार के दरार आ जाते है। दोनो न खुलके बात कर पाते है, शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ती भी वे नहीं कर पाते है। दोनों में एक तनाव सा आ जाता है। दोनों साथ रहते भी अपरिचित से लगने लगते है, वे विवाहित होकर भी अविवाहित सा जीवन गुजारते थे। नरेश इस स्थिति से मुक्तिपाना चाहता है लेकिन दिल्ली जैसे महानगर में आर्थिक अभाव के कारण अलग सा घर लेकर रहना उनके लिए असंभव। दोनों में बढती दूरियों के कारण नरेश का शंकित मन में हमेशा चित्रा और सुगंत के बीच का शक रहता। पहले तो चित्रा समझ ही नहीं पाती कि नरेश किस बात का शक करता है। जब चित्रा को पता लगता है तो वह अपनी सफाई पेश करती है। नरेश का शक इतना बढ जाता है कि फिर चित्रा अपनी सफाई देना भी बंद करती है।

चित्रा एक उच्च शिक्षित युवती है इसलिए ऐसे खाली बैठना उसे घुटन महसूस होती है। सुमन उसे प्रेस में प्रूफ रीडिंग करने का काम दिलवाता है। यह बात नरेश को और भी बरदाश नहीं होती। अपने ओर पति की उपेक्षा चित्रा में सुमंत के प्रति आकर्षण को बढावा देता है। नरेश को बार-बार ऐसा लगता है कि चित्रा किसी दूसरे पुरुष; सुमंत के साथ शारीरिक संबंध रखती है। इसी बीच नरेश को काम संबंधित प्रोग्राम के लिए दिल्ली से बाहर एक हफते के लिए जाना पडता है। इसी कारण से चित्रा और सुमंत ओर भी करीब आ जाते है। नरेश को जब पता चल जाता है कि चित्रा अब गर्भवती है तब वह छुट्टी लेकर चित्रा को अकेली छोडकर अपने पिता के पास जला जाता है। चित्रा भी प्रसव के लिए अपने मायके चली जाती है। वह एक पुत्र को जन्म देती है। नरेश फिर सब बाते भूलकर चित्रा को वापस आने का अनुरोध करता है। चित्रा बच्चे के साथ आकर फिर नई जिंदगी की शुरु आत करती है।

पुत्र गुड्डु की आकस्मिक बीमारी में सुमंत पुनः घर में प्रवेश करता है। तीसरा आदमी के पुनः प्रवेश से नरेश फिर से परेशान हो जाता है। आर्थिक अभाव में पति से पूछे बगैर वह सुमंत की सहायता से एक हायर सेकेण्डरी स्कूल में नौकरी हॉसिल करती है। चित्रा दुबारा गर्भवती होती है लेकिन नरेश इस बच्चे को गिराना चाहता है। नरेश अपना विचार प्रकट करते हुए कहता है अगर मेरे साथ जोओगी तो ज़िंदगी का दर्शन भी मेरे साथ करना पड़ेगा, पर चित्रा इसपर क्रोधित होकर कहती है कि... "मैं जानती हूँ कि मुझे पहली जैसी हालत में छोडकर फिर तुम भाग जाओगे, तुम यही करोगे तुम्हारे पास और कोई रास्ता नहीं है..... हो या न हो, पर मैं इतनी बेचारी नहीं हूँ , जितना तुम समझते रहे हो"[1]।

(तीसरा आदमी कमलेश्वर - राजपाल एण्ड सण्स -नई दिल्ली, 1976)

नरेश तबदला लेकर पटना चला जाता है लेकिन चित्रा दिल्ली और अपनी नौकरी को छोडने तैयार नही थी। नरेश की अनुपस्थिति में सुमंत और चित्रा नये पति-पत्नी की तरह साथ रहने लगते है। नरेश दिल्ली आकर सुमंत की अनुपस्थिति में चित्रा को अपना बनाकर बदला लेना चाहता है। वह कहता है कि - "तब मेरे भीतर का हिंसक पशु जागा था। प्रतिशोध की भावना उफनाने लगी थी और मैंने चित्रा को पकड़ लिया था मन में मात्र इतना ही था कि अब सिर्फ एक बार उसे अपनी पत्नी बनाकर ठुकराउँ और फिर हमेशा के लिए चला जाउँ। शायद इससे मेरी आहत अहं

तृप्त हो जाता।"[2]

(तीसरा आदमी - कमलेश्वर - राजपाल एण्ड सण्स - नई दिल्ली, 1976)

लेकिन चित्रा की हटता के कारण वह असफल हो जाता है। बहुत बाद में उसे पता चलता है कि सुमंत ने आत्महत्या कर ली है। जिसका कारण पति-पत्नी के बीच तीसरे आदमी नरेश के आने के कारण है। नरेश को लगता है कि चित्रा अब वापस आयेगी लेकिन अपनी हढनिश्चयता के कारण वह अकेली रहने का निर्णय लेती है। वह भी पहले के समान चित्रा के साथ न रह सकता था। तीसरे आदमी की छाया हमेशा नरेश को सताती था। इससे छुटकारा पाना उसके लिए असंभव था। इस प्रकार हम पाते है कि अकेलेपन को बर्दाशत करती चित्रा पति के शक के कारण सारा जीवन घुटन महसूस करती थी।

निष्कर्ष - नई कहानी आंदोलन के प्रमुख प्रवर्तक कमलेश्वर का अत्यंत लोगप्रिय उपन्यास हैं तीसरा आदमी। इसमें प्रेम और पारिवारिक संबंध के नाते स्त्री और पुरुष के बीच किसी तीसरे व्यक्तिकी उपस्थिति का चित्रण है। तीसरे के आगमन से टूटते पति-पत्नी के संबंध को अत्यंत मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया गया हैं। फ्रायड के मनोविश्लेषण पध्दति से प्रेरणा लेकर व्यक्तिके अचेतन मन की स्थिति, द्वंद्व, शंका, डर, हीनभावना एवं अहं का सफल अभिव्यक्ति दिया गया है। पढी-लिखी चित्रा पति के अभाव में भी दिल्ली जैसे महानगर में अपनी अस्तित्व बनाए रखने की कोशिश करती। सुमंत की आत्महत्या की खबर सुनकर नरेश का अहं भी टूटकर बिखर जाता है। सदा उसे उस तीसरे की छाया सताती है। इस प्रकार लेखक ने जीवन की व्यस्तताओं के कारण तीसरे व्यक्ति के आगमन से पति-पत्नी के संबंध विच्छेद का वर्णन किया है। अहं और शक के कारण टूटते पारिवारिक संबंधों का यथार्थ परक चित्रण किया गया है। उपन्यासकार ने महानगर में सीमित आय में जीने को विवश मध्य वर्गीय परिवार की आर्थिक मजबूरियों का चि्रत्रण नरेश के माध्यम से किया है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची -

1. हिन्दी उपन्यासों में नारी चित्रण - डॉ उषा स्पकाले, विद्या प्रकाशन, कानपुर, 2014
2. नारी विमर्श और मैत्रेयी पुष्पा का कथा साहित्य - डॉ अनिला के पटेल, माया प्रकाशन, 2017
3. नारी सशक्तीकरण - डॉ हरिदास रामजी शण्डे सुदर्शन , ग्रन्थ प्रकाशन, जयपुर, 2005
4. तीसरा आदमी - कमलेश्वर, राजपाल एण्ड सन्स, नई दिल्ली, 1976
5. कमलेश्वरः जीवन यथार्थ के शिल्पि - सुधाराणि सिन्हा, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013
6. कमलेश्वर के उपन्यासों की वस्तु चेतना - मधुकर सिन्ह, सबुदागर प्रकाशन,
7. https://www.livehindustan.com/news/article1-story-161066.html
8 https://www.google.com/amp/s/wwbbyew.jansatta.com/sunday-magazine/jansatta-article-about-women-name-in-culture/244742/lite

डॉ.जी शांति - शोध निर्देशिका

शोध छात्रा, हिन्दी विभाग

श्रीअबिरामी इल्लमय वनप्रस्था रोड

2/179 ए2 , वडवल्लि कोयम्बत्तूर.41, तमिलनाटु

सुशीला टाकभौरे के उपन्यास "नीला आकाश" दलित विमर्श की नज़र में

दिव्या.एम.एस

सन 2013 में प्रकाशित सुशीला टाकभौरेजी का 'नीला आकाश' उपन्यास दलितों में आए हुए बदलावों को चित्रित करते हुए उनकी प्रगति को आख्यायित करता है । इस उपन्यास के पूर्वार्ध की कथा भीकूजीऔर चंदरी नामक दंपति के इर्द-गिर्द घूमती है, दूसरीओर उत्तरार्ध की कथा नीलिमा और आकाश नामक निम्नवर्गीय चरित्रों से जुड़ी हुई है। यह उपन्यास समाज में अछूत माने जाने वाले मांग और वाल्मीकि जाति से जुड़ा हुआ है। भीकूजी और चंदरी के समय का दलित समाज शोषित और पीड़ित है जबकि उनकी पोती नीलिमा अपने समाज को आगे लाने के लिए साहसपूर्ण कदम उठाती है, जिसमें आकाश उसका भरपूर सहयोग करता है और वे सफलता प्राप्त करते हैं।

उच्च वर्ग एवं निम्न वर्ग के उच्च - नीच का भेदभाव होना आम बात है लेकिन लेखिका ने इस उपन्यास में मांग और वाल्मीकि जाति जो कि दोनों दलित जातियाँ हैं , वे एक दूसरे से ऊँच-नीच का भेदभाव रखती है। उनका उल्लेख करते हुए सुशीलाजी ने लिखा है - "सेवा नगर में बसने वाली इन दो जातियों के बीच उन दिनों आपस में रोटी व्यवहार नहीं था और न ही बेटी व्यवहार था। दोनों ही जातियाँ अपने से दूसरी को छोटा मानती है ,बस गाँव बस्ती के रिश्ते से वे आपस में हँस बोल लेते हैं। कभी आपस में स्वार्थ टकराने की स्थिति में लड - झगड़ भी लेते हैं।"[1]

लेखिका ने आगे बताया है कि गाँव के उच्च वर्ग के लोगों के लिए कुआं ,पनघट ,रास्ते, चौबारे, मंदिर, खेत - खलिहान, बैलगाडी, हल, बैल सब कुछ सुविधाएँ उपलब्ध थीं, जिससे उन्हें जीवन यापन करने में आसानी रहती थी दूसरी ओर दलित वर्ग का जीवन नारकीय बना हुआ था। सेवा नगर के लोगों के पास उपर्युक्तकोई भी सुविधा नहीं थी। लेखिका के शब्दों में - "सेवानगर के लोग पीने का पानी सवर्ण बस्ती के कुँए से दूर खड़े रहकर मांग कर लाते हैं। वे जहाँ काम करते हैं, उन घरों से दोपहर के बाद बचा हुआ या जूठा बासी रोटी का टुकड़ा मांग कर लाते हैं। खेत - खलिहान में काम करने पर अनाज मांग कर लाते हैं। गांव के लोगों के फटे - पुराने कपड़े मांग कर लाते हैं । उनका जीवन मांगकर लाई वस्तुओं पर ही चलता है"[2]

भीकूजी और चंदरी स्वभाव से धार्मिक थे। उन्हें विश्वास था कि भगवान का नाम लेते रहने से सब कुछ अच्छा होगा। भगवान का नाम लेने से मोक्ष मिलता है। स्वर्ग में जाने के लिए धर्म का पालन ही एक रास्ता है। उनका मानना था कि 'भगवान का नाम पुकारने का सबसे सरल और सहज तरीका है कि अपने बच्चों के नाम भगवान पर रखो। भगवान को याद न करो और सिर्फ अपने बच्चों को पुकारो तो सहज ही धर्म का लाभ मिल जाता है। भगवान को लगता है कि हमने उसे याद किया और भगवान हमारी मदद के लिए तैयार रहते हैं"[3] उपर्युक्त धार्मिक विश्वास के कारण ही भीकूजी और चंदरी ने अपनी चारों बेटियों का नाम रखा था - सीता, राधा, लक्ष्मी और पार्वती। बेटे का नाम रखा था रामकिशन। उपर्युक्त नामों से चार देवियों और एक देव का

स्मरण हो जायेगा ऐसा मानना था।भीकूजी और चंदरी दलित है फिर भी शिक्षा का महत्व समझते हैं इसलिए सवर्ण वर्ग द्वारा किए गए अपमानों को झेलते हुए अपनी चार लड़कियों एवं एक लड़के को, उच्च शिक्षा देने का पूरा - पूरा प्रयत्न करते हैं। चन्दरी गाँव के स्कूल के आसपास साफ-सफाई की नौकरी करती है, साथ ही अपनी जाति का परंपरागत व्यवसाय भी करती है।

चंदरी अपनी चारों बेटियों के नाम गाँव के प्राथमिक विद्यालय में लिखवाती है, लेकिन उन्हें छुआछूत और भेदभाव का शिकार होना पड़ता है। वहाँ के मास्टर उन चारों बेटियों को कक्षा तीन से आगे नहीं बढ़ाते हैं। उसके बेटे रामकिसन को भी कक्षा आठ से आगे नहीं जा सके। चंदरी की संतानों के साथ जो भेदभाव होता था। लेखिका ने इन शब्दों में वर्णित किया है - "लक्ष्मी और पार्वती स्कूल में प्यास लगने पर पानी के घड़े के पास जाती। आसपास किसीको न देखकर वे अपने हाथ से पानी लेकर पी लेती स्कूल का पानी का घड़ा छूने के दंड स्वरूप लक्ष्मी और पार्वती कई बार बुरी तरह पिट चुकी है। प्रतिदिन अपमान सहते हुए वे स्कूल जाने से कतराने लगी।"[4]

भीकूजी और चंदरी अच्छा घर - बार खोजकर चारों बेटियों की शादी कर देते हैं । बेटे की शादी भी हो जाती है। चंदेरी को पोती के रूप में नीलिमा प्राप्त होती है लेकिन परंपरागत बंधनों में जगडकर पोते की चाहत में वह रामकिशन को परेशान करती है। रामकिशन जब अपनी मां को समझाता है कि बड़ा परिवार होने से जीवन सुखपूर्वक नहीं जी सकते तब चंदरी को अपनी गलती का एहसास होता है और वह पोता पाने की जिद छोड़ देती है। रामकिशन अपनी माँ को समझाते हुए कहता है- 'अम्मा तुम कौन से जमाने की बात कर रही हो? एक पत्नी के रहते दूसरी शादी करना गैर कानूनी बात है। अभ जमाना बदल गया है। ज्यादा बच्चों का खर्च भी ज्यादा होता है। आज के जमाने में बस एक ही बच्चा चाहिए। चाहे वह बेटा हो या बेटी। हमें दूसरा बच्चा ही नहीं चाहिए।"[5]

नीलिमा स्कूल में किए जाने वाले भेदभाव का सामना करते हुए उच्च शिक्षा प्राप्त करके शिक्षिका बनना चाहती है। उच्च शिक्षा प्राप्त करके वह समाज - जागृति के कार्य करने के साथ गाँव के बच्चों को मुफ्त में ट्यूशन पढ़ाती है। अपनी दादी चंदरी और बुधिया को वह 'महिला मंडल' नामक संस्था बनाकर अपनी जाति की महिलाओं को शोषण से मुक्त कराती है। अपने पिता रामकिशन को अनपढ़ प्रौढ लोगों को शिक्षित करने का कार्य देती हैं।

माँग जाति की नीलिमा और वाल्मीकि जाति का आकाश दोनों बौद्ध रीति से विवाह करके अपने समाज में एकता का संदेश फैलाते हुए अंतरजातीय विवाह करते हैं। दलित समाज में व्याप्त अशिक्षा ही उनके अंधविश्वास को बढ़ावा देती है और उनको दासता से मुक्त नहीं होने देती। नीलिमा और आकाश उच्च शिक्षित होकर तथा अंतरजातीय विवाह करके निम्नवर्ग को दलित एकता का उत्कृष्ट दृष्टांत सामने लाते है। नीले आकाश की तरह ही नीलिमा और आकाश मिलकर दलितवर्ग को उन्मुक्त होकर जीने की दिशा में ले जाते हैं, यही इस उपन्यास का कथ्य है।

निष्कर्ष : इस प्रकार सुशीला टाकभोरे जी ने 'नीला आकाश' में दलित जीवन के यथार्थ को सामने रखा है । दलित, शोषण उत्पीड़न और आभावपूर्ण जीवन जीते आ रहे है। आज भी इनके घर गाँव के दूसरे छोर पर ही होते है। जहाँ सुविधाओं का अभाव रहता ही है! शिक्षा इनके जीवन में नहीं होती है। अगर कोई लेना भी चाहे तो सवर्ण लोगों की मानसिकता के शिकार होकर रह जाते हैं या तो उनकी बेटियों के साथ दुष्कर्म

किया जाता है, या फिर उसे मौत के घाट उतार दिया जाता है। यदि वह इसके खिलाफ बोलना भी चाहे तो सवर्णों का बोल बाला चारों तरफ ही रहता है। पुलिस भी उन्हीं के इशारों पर चलती है। इन बेचारों की कहीं भी सिफारिश नहीं होती है। इन्हें अपने पैतृक काम करने के लिए मजबूर किया जाता है । यदि वे आगे बढने की भी सोचें तो इन्हें धमकी दी जाती है। आज कई उपन्यासों, कहानी या कविताओं के माध्यम से इन रचनाकारों ने अपने समाज की स्थिति को समाज के सामने रखने का प्रयास किया है। 'नीला आकाश' उपन्यास में दलित जातियाँ समय के साथ परिवर्तन की ओर बढ़ती नजर आ रही है। इस उपन्यास के पात्र अपने जीवन से प्रेरित होकर आगे आने वाली पीढ़ी को जागृत कर रहे हैं। 'नीला आकाश' दलित जीवन के कठोर यथार्थ का जीवंत दस्तावेज़ है, जो वर्तमान और भविष्य की आशाओं आकांक्षाओं को व्यक्त करता है। नीलिमा और आकाश दोनों पात्र दलित समाज की एकता के प्रतीक हैं। जिस प्रकार आकाश का कोई अंत नहीं है! जहाँ आकाश होगा वहाँ नीलिमा होगी ही अंततः यही कहा जा सकता है कि 'नीला आकाश दलित जाग्रति का उपन्यास है, साथ ही जागरूकता का भी। दलित सशक्तिकरण और स्त्री सशक्तिकरण दो केंद्र बिन्दु हैं। जिनके इर्द-गिर्द पूरी कथा का परिवेश आगे बढ़ता है। इस उपन्यास के माध्यम से जातिविहीन समाज, परम्पराओं से मुक्त होकर समतावादी समाज के दृष्टीकोण की मांग की गयी है। शिक्षासंगठन और संघर्ष दलित मुक्ति का मार्ग है। यह इस उपन्यास में भलीभांति दर्शाया गया है। छोटा परिवार सुखी परिवार वाला संदेश हमें इस उपन्यास में मिल सकता है। लेखिका हम सभी को सिर्फ यह संदेश देना चाहती है कि यह कोई दलित कथा नहीं बल्कि बेबसी, मोहभंग आशावादिता की कथा है। 'नीला आकाश' में आत्मसम्मान व अस्मिता का अनवरत संघर्ष, अस्पृश्यता व असमानता से मुक्ति, रूढ़ियों तथा पाखण्डों से छुटकारा, कलुषित परम्पराओं का त्याग, स्त्री-सशक्तीकरण की आवश्यकता, यथास्थितिवाद के प्रति विद्रोह आदि मुद्दों को उजागर करते हुए, सदियों से बहिष्कृत तिरस्कृत जीवन जीने वाले दलितों की मर्मवेदना के प्रति मानवीय संवेदना जागृत करने का सहज और सफल प्रयास है। नीलिमा और आकाश केवल एक वधू और वर के नाम नहीं है बल्कि दोनों मिलकर एक नए नीले आसमान का निर्माण करेंगे जो हम सबका होगा हमारा अपना नीला आकाश। वे पति-पत्नी होने के साथ दो प्रेमी हैं दो मित्र भी हैं समाज जागृति और प्रगति परिवर्तन के आंदोलन के समर्पित्त दो कार्यकर्ता है समाज के मार्गदर्शक हैं वे सच्चे जीवन साथी हैं। जीवन पथ पर साथ- साथ चलते हुए उन्हें अपने समाज के प्रति कर्तव्य निभाना है अपने लक्ष्य की ऊँचाई की ओर नीलिमा और आकाश बढ़ते रहे।

संदर्भ ग्रंथ

1 डॉ. सुशीला टाकभौरे के साहित्य में दलित नारी संवेदना - डॉ. शिवगंगा रंजणगि

2 नीला आकाश - सुशीला टाकभौरे - पृ:14

3 नीला आकाश - सुशीला टाकभौरे - पृ:15

4 नीला आकाश - सुशीला टाकभौरे - पृ:20

5 नीला आकाश - सुशीला टाकभौरे - पृ:25

6 नीला आकाश - सुशीला टाकभौरे - पृ:60

शोधार्थी,

हिंदी विभाग,

यूनिवर्सिटी कॉलेज, तिरुवनंतपुरम।

divujith@gmail.com

स्वयं प्रकाश की कहानी "बाबुलाल तेली की नाक" में चित्रित सामाजिक चेतना

दिव्या.जी.आर

स्वयं प्रकाश भारतीय समाज के सजग प्रहरी और सच्चे प्रतिनिधि साहित्यकार हैं । उनकी रचनाओं में तत्कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों का सजीव चित्रण देखने को मिलता है। स्वयं प्रकाश जी ने अपनी कहानियों और उपन्यासों में यथार्थ और आदर्शों का अद्भुत समन्वय किया है। उनकी कहानियों में वर्ग- शोषण के विरुद्ध चेतना का भाव देखने को मिलता है। उन्होंने अपनी राचना के अंतर्गत सामाजिक जीवन में जाति, संप्रदाय और लिंग के आधार पर हो रहे भेदभाव के विरुद्ध प्रतिकार के स्वर को उभारा है। रोचक किस्सागोई शैली में लिखी गयी उनकी कहानियाँ हिंदी की वांचिक परंपरा को समृद्ध करती हैं।

स्वयं प्रकाश अपने समय के प्रसिद्ध कहानीकार हैं। इनकी कृतियों में देश, समाज, नगर- गाँव की सुख-समृद्धि देखने की आकांक्षा प्रकट हुई है। भारतीय सांस्कृतिक जीवनमूल्य उनमें प्रवाहित हुए हैं। मध्यवर्गीय जीवन के कुशल चितेरे स्वयं प्रकाश की कहानियों में वर्ग- शोषण के विरुद्ध चेतना है तो हमारे सामाजिक जीवन में जाति, संप्रदाय और लिंग के आधार पर हो रहे भेदभाव के विरुद्ध प्रतिकार का स्वर भी है।

स्वयं प्रकाशजी को एक व्यंग्यपरक कहानी है - बाबू लाल तेली की नाक। इस कहानी के शीर्षक से हमको व्यंग्य की सूचना मिलती है। साथ ही साथ इसमें अस्पताल व्यवस्था की असहायता, जातिवाद आदि के प्रति भी आपने अपने व्यंग्य प्रस्तुत करते हैं।

बाबूलाल तेली एक साधारण कार्यालय का अतिसाधारण कर्मचारी है । कहानी के प्रारंभ में बाबूलाल तेली को स्वयं प्रकाश ने 'अतिसामान्य नागरिक' के रूप में प्रस्तुत करते हैं। एक अन्याय देखकर उसका प्रतिक्रिया ठीक उसी के बाद आपको ठेस पहुँचाती कुछ दुखत घटनायें इस कहानी प्रस्तुत करती हैं।

एक दिन बाबूलाल सड़क पर एक बलिष्ठ एक दुर्बल व्यक्तिको मारते देखा। सारे लोग ये देखकर चुप रहे थे। लेकिन बाबूलाल ने इसके विरुद्ध इतना मात्र कहा कि ' बस छोड़-छोड़ उस गरीब को क्यों पीटता है। ' तब उस बलिष्ठ व्यक्ति ने एक ज़ोरधार गुस्सा बाबूलाल की नाक पर जमा लिया और वह अपना रास्ता चला गया। बाबुलाल की नाक से खून बह रहा था । लेकिन कोई भी व्यक्तिसहानुभूति न प्रकट की और अपने- अपने रास्ते चले गये। बाबूलाल की राय में शुक्र है कि एक घूस में ही बात खतम हो गए शुक्र है। लेकिन खून बढ़ती तो उसको आस्पताल जाना पड़ा। पर वहाँ कोई सरकारी अस्पताल न होने के कारण एक विशाल शांतार आस्पताल गए जो एक बड़े सेठ ने अपनी दिवंगत सेठानी की याद में बनवाया था।

आस्पताल में पहुँचते तो पहले वह रिसप्शन गया। वहाँ से उसे पाँचवाँ मंजिल जाने को कहा और वहाँ से आठवाँ माला। इसी तरह घूमने के बाद बाबूलाल सातवाँ माले पर ई.एन.टी के विशेषज्ञ के पास पहुँचा। डाक्टर उनकी नाक सफ़ाई करने के बाद कहा कि ' मैं दाहिने नथुने का विशेषज्ञ हूँ । आपकी चोट बाएँ नथुने पर है। बाएँ नथुने के विशेषज्ञ विकासशील देशों के नाक संबंधित रोगों पर आयोजित एक सेमिनार में भाग लेने के लिए अमेरिका गये हैं । इसलिए वे परसों आयेंगे। इसके बाद बाबूलाल बाहर निकलते समय रिसेप्शन की लड़की ने उन्हें एक सुंदर बिल दिया।

बाहर जाते बाबूलाल ने सारा कार्य वहाँ खड़े लोगों से बताया। पर उसकी जाति के बारे में भी लोगों ने पूछा । बाबूलाल को गुस्सा आया तो फिर भी छुप रहा। तैली जाति के होने के कारण वे उन्हें उस समाज के एक डॉक्टर के पास ले गए जिसका नाम है- लालू राम तेली।

लालू राम तेली सरकारी आस्पताल से निलंबित होकर अब अपना प्राईवेट क्लीनिक चला रहा था। उन्होंने कोई टेस्ट, एक्सरे आदि के बिना ओपरेशन किया। आस्पताल से घर आकर दो- तीन दिनों के बाद बाबूलाल की हालत बुरी हो गयी । समाज के लोग अब निर्णय लिया कि समाज के डॉक्टर की लापरवाही के करण अपने समाज का नुकसान हुआ है। इसलिए बाबूलाल तेली की नाक का विषय अब समाज का नाक का विषय बन गया है। इसलिए शीघ्र ही समाज की नाक की रक्षा के लिए बाबूलाल को बंबई ले जाना पड़ेगा। एक महीने के बाद बाबूलाल लौटते वक्त एक विशेषता होती है कि जाते समय उसकी नाक सूखी सडी बासी पकौड़े जैसी लग रही थी लेकिन आते

समय नाक के स्थान पर केवल दो सुराह ही रह गए थे। बाबूलाल तेली को जुलूस के रूप में घर लाया गया। उनकी प्रशंसा करके लोगों ने बाबूलाल की कुर्बानी के बारे में बताया । अंत में बाबूलाल बिस्तर पर लेटते समय सोच रहा था -' शुक्र है। शुक्र है उसने मेरी नाक पर ही घूँसा मारा।' इस तरह बाबूलाल की बुरी हालत से कहानी समाप्त हो गयी।

स्वयं प्रकाश जी की कहानियों में समाज की विभिन्न यथार्थ समस्याएँ बड़ी ही चुटीले ढंग में प्रस्तुत है । ऐसी ही एक लोकप्रिय कहानी है -'बाबूलाल तेली की नाक'। किस तरह एक तेली समाज के व्यक्ति की नाक पर एक बलिष्ठ व्यक्तिने घूसा मारा और देखते ही देखते बाबूलाल की नाक पूरे समाज की नाक बन गयी। बाबूलाल अपनी हल्की फ्रैक्चर नाक को लेकर आस्पताल पहुँचे तो उन्हें बुरी तरह लूट लिया गया और आस्पताल की औपचारिकता किसी व्यक्तिके लिए कितना असंवेदनशील और अमानवीय है इसका बखूबी जिक्र इस कहानी में है। बाबूलाल की नाक का इलाज शुरू भी नहीं होता कि आस्पताल का बिल देखकर उनका होश उड़ जाता है।

परंतु कहानी जिस सामाजिक सच्चाई पर कुठाराघात करती है वह है समाज की जाति और धर्म के नाम पर सभी छोटी- बड़ी ज़रूरी व गैर ज़रूरी मुद्दे को अस्मिता से जोड़कर जातिवाद व सांप्रदायिक शक्तियों का उभार करना । बाबूलाल तेली से पूछा जाता है -"आप हिंदू हो? कौन जात हो? ... हम लोग तेली समाज से आये हैं।" अब बाबूलाल की नाक का इलाज उनके समाज का व्यक्ति करता है तो मामला बिगड़ जाता है और बाबूलाल को मुंबई ले जाना पड़ता है। अब बाबूलाल की नाक पूरे समाज की नाक बन जाती है -"अब यह एक गंभीर समस्या थी, अब सवाल बाबूलाल तेली की नाक का नहीं समाज की नाक का था।"

वस्तुतः समाज में जातीय विभाजन का जो खेल शुरू हुआ उसमें 'अस्मिता की राजनीति' करनेवाली शक्तियाँ लगातार मुद्दों को कैश करने में लगी है। इस विद्रूपता को उद्घाटित करते हुए समाज की विभाजनकारी मानसिकता को इस वाक्य से दर्शाते हैं-"..... पर एक बात बताओ। हो तो तेली ही न? कोई और तो नहीं हो?" स्वयं प्रकाश की कहानियाँ गंभीर विचारों को हल्की संवाद शैली में लाती है। यही कारण है कि स्वयं प्रकाश जी की कहानी पाठक - श्रोताओं के अंदर तक प्रफुल्लित होती है। इसी संवाद शैली में स्वयं प्रकाश लिखते हैं कि बाबूलाल तेली जब वापस इलाज कराकर लौटे तो जोरदार स्वागत प्रशंसा में ऐसे पुल बाँधे गए मानो देश के नाम बलिदान करके लौटे हों -"..... भाई बाबूलाल जी ने अपनी नाक देखकर समाज के लिए अद्भुद और अनुकरणीय त्याग का उदाहरण पेश किया है।"

स्वयं प्रकाश जी समाज में व्याप्त बुराई को पहचानते हैं और हमारे सामने लाकर रख देते हैं कि देखो यह है वस्तु स्थिति। अब निर्णय तुम करो कि यह अच्छा है या बुरा। नैतिक शिक्षा और उपदेश देने का कोई प्रयास इनके साहित्य में सायास नहीं मिलता है।

हम देखते हैं कि दुनिया में प्रकृति ने हमें सब कुछ दिया है, परंतु मनुष्य ने स्वयं ही से अपने लिए इतनी समस्यायें पैदा कर ली हैं कि आम- आदमी का जीना मुश्किल लगता है- सांप्रदायिकता, आतंकवाद, सत्ता-संघर्ष, लोभ- लालच ने मानव जीवन को यंत्रीकृत कर तबाह कर दिया है। मानव संस्कृति से मानवता तबाह कर तिरस्कृत कर चुकी है।

स्वयं प्रकाश अपनी कहानियों के मध्यम से आधुनिक समस्या की तरफ हमारा ध्यान सहज तरीके से आकृष्ट करते हैं। संस्कृति की संवाहक माने जानेवाली ये कथाएँ मानव मूल्यों की स्थापना का ही उद्देश्य लेकर आती हैं। इन्हीं मूल्यों के बल पर ही जाति, धर्म एवं विभिन्न भेदों-उपभेदों को नकार कर मानव जीवन को सुंदर बनाने का प्रयास किया जाता रहता है। उनकी कहानियों का मूल उद्देश्य मनोरंजन कभी नहीं रहा है, इनके माध्यम से अनुभवों का आदान प्रदान, मानवता की शिक्षा, सत्कर्म का संदेश दिया जाता है। इसलिए इन कथाओं में कल्पना और मिथकों का प्रयोग आवश्यक हो जाता है। जिससे मनुष्य ऐसे कार्य न करें जिससे मानव जाति व मानवीय संस्कृति के कल्याण में बाधा उत्पन्न हो। स्वयं प्रकाश का उद्देश्य भी इन कथाओं के मध्यम से दुनिया को खूबसूरत बनाने का है। उन्होंने अन्यत्र कहा भी है- हम एक अधिक सुंदर, कम क्रूर, अधिक न्यायपूर्ण और अधिक समाप्तपूर्ण समाज बनाने का सपना देखते हैं। जो शक्तियाँ समाज को बाज़ार बना रही हैं, अपने स्वार्थ के लिए पृथ्वी नामक इस खूबसूरत नीले ग्रह को बर्बाद कर रही हैं, मनुष्य और मनुष्य के बीच भयानक असमानता पैदा कर रही हैं..... उनसे ही तो निपटना है। '

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

स्वयं प्रकाश की चुनी हुई कहानियाँ, संपादक : राजीव कुमार प्रकाशक : अमन प्रकाशन, 104ए/80 सी रामबाग, कानपूर - 208012, पृ.सं - 136

शोध छात्रा, सरकारी वनिता कॉलेज
केरल विश्वविद्यालय, तिरुवनन्तपुरम

हाइपर रियालिटी और छलना सिद्धांत

डॉ.सोफिया राजन

छलना सिध्दान्त अथवा Simulacra के लिए प्रसिध्द फ्रांसीसी समाजशास्त्री जीन बॉड्रिलार्ड को उत्तर-आधुनिकतावाद का प्रवाचक पुकारा जाता है । उत्तर-आधुनिक समीक्षा पर बॉड्रिलार्ड के छलना सिध्दान्त का सर्वाधिक प्रभाव है। छलना (साइ-मूलक्रा) Simulacra स्वयं एक उत्तर-आधुनिक स्थिति है । छवि और सूचना उत्तर-आधुनिकता के वे औज़ार हैं जो यथार्थ और कल्पना के भेद मिटाते हैं । जीन बॉड्रिलार्ड एक फ्रांसीसी सांस्कृतिक सिद्धांतकार,समाजशास्त्री एवं दार्शनिक हैं और उनके सबसे उल्लेखनीय कार्य में हाइपर रियालिटी Hyper reality और साइमुलक्रा Simulacra की अवधारणा को स्थापित करना शामिल है। हाइपर रियालिटी या अतियथार्थवाद एक काल्पनिक संचार है जिसे सूचना प्रौद्योगिकी द्वारा संभव बनाया गया है । यह भौतिक वास्तविकता को आभासी वास्तविकता और मानव बुद्धी को कृत्रिम बुद्धिमत्ता Artificial Intelligence के साथ मिलाने की अनुमति देता है। हाइपर रियालिटी Hyper reality को एक ऐसी स्थिति के रूप में देखा जाता है जिसमें जो वास्तविक है और जो काल्पनिक है वह एक साथ सहज रूप से मिश्रित हो जाता है ताकि एक कहाँ समाप्त होता है और दूसरा कहाँ शुरू होता है ,इसके बीच कोई स्पष्ट अंतर न हो। अतियथार्थवाद की दुनिया में वास्तविकता का अनुकरण वास्तविक चीज़ों की तुलना में अधिक वास्तविक प्रतीत होता है। अपनी पुस्तक सिमुलक्रा एंड सिमुलेशन Simulacra and Simulation में फ्रांसीसी समाजशास्त्री जीन बॉड्रिलार्ड ने अतिवास्तविकता शब्द का आविष्कार किया ।

जब 1981 में बॉड्रिलार्ड ने हाइपर रियालिटी के सिद्धांत का प्रस्ताव रखा ,तो इसे व्यापक रूप से एक अत्यधिक विवादास्पद और उत्तेजक अवधारणा के रूप में माना गया था।

बॉड्रिलार्ड के अनुसार वर्तमान दुनिया एक सिमुलैक्रम है, जिसमें वास्तविकता को झूठी तस्वीरों से इस हद तक प्रतिस्थापित कर दिया गया है कि वास्तविकता और अवास्तविकता के बीच अंतर करना असंभव है। वे यह सिद्ध करना चाहते हैं कि कैसे उत्तर आधुनिक सभ्यताओं में असली और नकली के बीच का अंतर धुंधला हो गया है। बॉड्रिलार्ड का मानना है कि मार्क्स का यथार्थ मर गया। अब यथार्थ रचना का, उपजीव्य नहीं, यथार्थ का छद्म रचना का आधार है। दूसरे शब्दों में वे स्वीकार करते हैं कि, छद्म यथार्थ का जीवन जगत में उपयोग तथा साहित्य विधाओं में उसकी प्रस्तुति, पाठ की उत्तर-आधुनिकता है। परिणामस्वरूप, विभिन्न प्रकार के मल्टी मीडिया के कारण मूल घटना या अनुभव संशोधित किया जा सकता है ताकि हमारा दिमाग इस दुनिया में जिसे वास्तविक मानता है वह अतिवास्तविक हो सकता है। अतिवास्तविकता को एक ऐसी स्थिति के रूप में देखा जाता है ,जिसमें संस्कृति और मीडिया में वास्तविकता की धारणाओं को कल्पना के माध्यम से इस कदर तोड़ा-मरोड़ा जाता है कि दोनों में अंतर ढूंढ पाना मुश्किल सा प्रतीत होता है। हाइपर रियालिटी के खतरों को सूचना प्रौद्योगिकी द्वारा भी बढ़ावा दिया जाता है ,जो प्रमुख शक्तियों को उपकरण प्रदान करती है,जो उपभोग और भौतिकतावाद को बढ़ावा देने के लिए इसे प्रोत्साहित करना चाहती है। जैसे-जैसे समाज उपभोक्ता संस्कृति की ओर परिवर्तित हुआ है , मुक्त बाज़ार अर्थव्यवस्था के संयोजन और मीडिया और संचार प्रौद्योगिकियों के भीतर पाई गई प्रगति ने इस विकास को अति वास्तविकता की

ओर प्रभावित किया है। नई मीडिया प्रौद्योगिकी के उद्भव और आधुनिक समय में मीडिया की बढ़ती भूमिका के माध्यम से हाईपर रियालिटी के समावेश और प्रभावों के बीच एक बढ़ती हुई कड़ी प्रदर्शित होती है । मीडिया और अतियथार्थवाद की उपस्थिति का उसके दर्शकों पर पड़ने वाले प्रभाव के बीच एक मज़बूत संबंध है।इसने कृत्रिम वास्तविकताओं और वास्तविकता के बीच की रेखाओं को धुंधला कर दिया है जो इसके संपर्क में आने वाले लोगों के दिन-प्रतिदिन के अनुभवों को प्रभावित किया है।

2000 के दशक की शुरुआत में स्मार्टफॉन के आगमन के साथ ,ऑनलाईन उपस्थिति और वास्तविक दुनिया में उपस्थिति पर्यायवाची बन गई है। किसी व्यक्तिका डिजिटल पदचिह्न अक्सर हमें किसी व्यक्तिके वास्तविक जीवन से अधिक उसके बारे में बता सकता है । इसका कारण यह है कि लोगों का व्यवहार इन्टरनेट पर नाटकीय रूप से बदल सकता है और इन्टरनेट अराजकतावादियों का सुरक्षित ठिकाना बन गया है। सोश्यल मीडिया प्लॉटफार्म पर बनाई गई हाईपर रियालिटी को मज़बूत माना जाता है और वह इतना प्रभावशाली है कि इसकी गुणवत्ता और भावना को सामाजिक वास्तविकता में अनुवादित किया जा सकता है। जीन बॉड्रिलार्ड के कुछ सबसे प्रभावशाली सिद्धांतकारों में कार्ल मार्क्स, फ्रॉयड,लेवी स्ट्रास,नीत्शे आदि शामिल हैं । बॉड्रिलार्ड का मानना है कि पूँजीवाद हमेशा छलना की चिह्न व्यवस्था पैदा करता है । यही मान्यता उत्तर-आधुनिक दर्शन की धुरी है और पूँजीवाद का पोषक उत्तर-आधुनिकता ही भूमण्डलीकरण का जन्मदाता है । पूँजीवाद ने श्रम द्वारा उत्पादित माल पर अपने परम्परागत नियंत्रण से लेकर अब उन सामाजिक छवियों, प्रतीकों और संबंधों तक पर नियंत्रण कर लिया है जो समाज का संचालन किया करती थी । इसमें उत्पादन ही शामिल नहीं है, बल्कि वे तमाम मानव गतिविधियाँ आ जाती हैं जो उत्पादकवादी पूँजीवाद ने भी नियंत्रण में नहीं ली थीं । इस वृध्द पूँजीवाद में पूर्वानुमान, छलना और कार्यक्रम द्वारा सामाजिक नियंत्रण उत्पादन से होता था और बहुत- सा क्षेत्र स्वायत्त रह जाता था, अब नहीं बचता । अब एक चिह्न या मॉडल यथार्थ से पृथक रहते हैं। यह (पूँजीवादी) जीवन छलनामय है जिसमें चिह्नों का एक ऐसा रूप सक्रिय होता है जो स्वयं को ही पुनरु त्पादित करता रहता है और कभी भी सच्चे लक्ष्यों तक नहीं पहुँचता।

उत्तर-आधुनिकता में स्वीकृत 'छलना' कहती है कि हम अर्थ के एकहरे संसार से आगे 'चिह्नों' के संसार में आ गए हैं। चिह्नों को स्वीकार करना नए यथार्थ को स्वीकार करना है, नकारना नहीं । प्रमोद के नायर जी का वक्तव्य इस सिलसिले में महत्वपूर्ण है "Simulation is the norm of post modernity, according to Baudrillard, we live in an age saturated with images, maps, models and signs that have become ends in themselves, and for which we have never known original. Thus we only have signs without an external reality, copies without originals."[1]

'सिमुलेशन' एक प्रति या नकल है जो वास्तविकता का विकल्प बनाती है। बॉडरिलार्ड के प्रमुख विचारों में जो शामिल हैं जिनका उपयोग अक्सर कला में उत्तर आधुनिकतावाद पर चर्चा करने में किया जाता है: 'सिमुलेशन' और 'हाइपररियल।' अतियथार्थ 'वास्तविक से अधिक वास्तविक 'The present world, according to Baudrillard, is a simulacrum, in which reality has been substituted with false pictures to the point where it is impossible to distinguish between the real and the unreal.

हम केवल चिह्नों का उपभोग करने वाले उपभोक्ता बनकर रह गए हैं । यथार्थ से हमारा संबंध मानो मिट गया है। इतना मिट गया है कि चिह्न और यथार्थ के बीच कोई

फर्क ही हम नहीं देख पा रहे । उदाहरण के रूप में उन्होंने डिस्नीलैंड (Disneyland) को लिया है। Cartoon characters हमारे मनो मण्डल में इतने हावी हो गए हैं कि हम Disney में चित्रित Mickey को ही यथार्थ मान बैठते हैं। वे डिज़नीलैंड को अतियथार्थता के उदाहरण के रूप में संदर्भित करते हैं । उनका तर्क है कि डिज़नीलैंड की काल्पनिक दुनिया, लोगों को गहराई से आकर्षित करती है और लोगों को यह विश्वास दिलाने के लिए काल्पनिक के रूप में प्रस्तुत किया गया है कि इसके सभी परिवेश वास्तविक हैं ।यह झूठी वास्तविकता एक भ्रम पैदा करती है लोगों के लिए इस वास्तविकता पर यकीन करना अधिक वांछनीय बनाती है ।डिज़नीलैंड एक ऐसी प्रणाली में काम करता है जो आगंतुकों को यह महसूस करने में सक्षम बनाता है कि तकनीक और निर्मित वातावरण हमें प्रकृति से अधिक वास्तविकता दे सकते हैं । डिज़नीलैंड की नकली प्रकृति वास्तविक जीवन में हमारी कल्पना और दिवास्वप्न की कल्पनाओं को संतुष्ट करती है । विचार यह है कि इस संसार में कुछ भी वास्तविक नहीं है। कुछ भी मौलिक नहीं है ,लेकिन सभी वास्तविकताओं की अंतहीन प्रतियाँ हैं।

What we see in Disney is a glossy, glamorized visual representation of something whose original we will never know.

बॉड्रिलार्ड बताते हें कि यह छलना समाज में मीडिया एवं फिल्म ही सबसे ज़्यादा हावी बनाती है । आम का मज़ेदार रस पीने वाला बच्चा विज्ञापनों में चित्रित रसीले आम की परिकल्पना कर मज़े से रसायनों के मिश्रण से बना आम रस पी जाता है। उसे मीडीया में दिखाए गए विज्ञापन छलने में डाल देते हैं । वैसे भी शहर में पलने वाले बच्चे ने यथार्थ आम का ताज़ा रस शायद ही पिया हो। उपभोक्तावादी पूँजीवादी व्यवस्था में यही होता है। बॉड्रिलार्ड ने बताया है कि इस वक्तमें रचना सम्भव ही नहीं। नकल, पेस्टीच और पेरोडी ही सम्भव है। यहाँ कोई प्रतिरोध सम्भव नहीं है। बॉड्रिलार्ड कहते हैं कि जनसंचार माध्यमों ने यह काम कई तरह से किया है। पहले यथार्थ खूब दिखाया है। फिर उसे छिपाया है। फिर यथार्थ के अभाव को छिपाया है और अन्ततः यथार्थ का सम्बन्ध विच्छेद कर दिया है यही साइमूलक्रा, छलना या प्रपंच है जहाँ अर्थ का अन्तिम संसार होता है। समाज शास्त्री जां बौद्रीआ को उत्तर-आधुनिकता के प्रधान वक्ता का दर्जा दिया जाता है। वे पेरिस के विश्वविद्यालय के आचार्य थे।

बॉड्रिलार्ड की रचनाओं में Simulations

उत्तर-आधुनिकतावादी सिध्दान्तों की दृष्टि में सबसे महत्वपूर्ण हैं। एम.ए.आर हबीब लिखते हैं "The underlying theme running through Baudrillard's analyses of modern culture and society is that "reality" has in the late capitalist era been replaced by codes of significations."[2]

बॉड्रिलार्ड ने सिद्ध किया है कि किस तरह यथार्थ की नई छलना ने भाषा और संबन्धों को उलझाया है और अदृश्य किया है। आज चीज़ें और दृश्य वे नहीं रहे जो हुआ करते थे। बॉड्रिलार्ड का छलना सिध्दान्त हमें नींद से जागने का आह्वान करती है। हम चिह्नों के चक्कर में पड़कर यथार्थ से कोसों दूर होते जा रहे हैं। इतना दूर कि यथार्थ वास्तव में क्या था यह भी भूल बैठे हैं। हमारा नैतिक मूल्य, सौन्दर्य शास्त्र सब छलना है।

संदर्भः

1. मॉडर्न लिटरेरी क्रिटिज़्स्मि एण्ड थियरी-एम् ए आर हबीब, पृ सं 118
2. मॉडर्न लिटरेरी क्रिटिज़्स्मि एण्ड थियरी-एम् ए आर हबीब, पृ सं 124

सह आचार्य

श्री नारायण गुरु मुक्त विश्वविद्यालय, कोल्लम

'पट्टिनत्तार' (काव्य)

अनुवादक : प्रो.डी. तंकप्पन नायर **मूल : पी. रविकुमार**

(पूर्वप्रकाशित से आगे)

(5) मोह बाकी रहता है

चिलचिलाती धूप-
पट्टिनत्तार छाया ढूँढता चला

डालियाँ झलता फैलता खडा
एक पेड दीखा
उसके तले पाँव पसारकर लेटा
दोनों हाथों का सहारा देकर
तकिये के रूप में रखा।

दीखता पत्तों के बीच में से
स्वच्छ नीलाकाश
जलता सूरज-
मंदगति से चलती हवा-
दूर आरव से
बहती नदी -

दो ग्रामीण स्त्रियाँ
नदी से पानी लेने के लिए
वहाँ से होकर आयीं
उनमें से एक स्त्री ने
साश्चर्य कहा :
"लो पट्टिनत्तार !
अनमोल संपत्ति
स्नेहनिधि माँ
प्रिय पत्नी
स्नेही परिचारक-
सब कुछ छोडकर
सब सुखों को त्यागकर
परित्यागी होकर
भटकता पट्टिनत्तार-
इनके दर्शन ही पुण्य है
हम उनके पास
जाकर प्रणाम करें
उनका आशीर्वाद पा लें"

"तेरा कथन अक्षरशः
सही है
लेकिन उनका संन्यास
अपूर्ण है
परिपूर्णता पर पहुँचने के लिए
आगे कुछ काल और चाहिए
उन्होंने सब कुछ नहीं त्यागा है
सुख पाने का जरा-सा मोह
बाकी है।

तूने नहीं देखा क्या
उन्होंने अपने दोनों हाथों को
सिर के नीचे रखे
आराम से लेटते नहीं क्या?"

हे शिव !

पट्टिनत्तार ने सिर के नीचे से
हाथों को हटाया -
ओह शिव !
ये कौन है?
मेरा संन्यास पूर्ण करने
आये महाज्ञानी है !
ओह शिव !
तूने ही मेरे लिए
इनको यहाँ भेजा है।

हरितवृक्ष की छाया छिपती है
स्वच्छ नीलाकाश छिपता है
जलता सूरज छिपता है
मंदानिल छिपता है
आरवसहित बहती
नदी छिपती है
ओह शिव !
ग्रामीण स्त्रियाँ लौट आयीं।

"लो !
पट्टिनत्तार ने सिर के नीचे से
हाथों को हटाया है
बाकी रह गई सुख की
आसक्ति भी मिट गयी है।
उनका संन्यास
पूर्ण हुआ है
अब हम उनके पास जाकर
आशीर्वाद लें।"

"नहीं.... नहीं....
उनका संन्यास
पूरा नहीं हुआ है
वे नहीं बने हैं पूर्णज्ञानी
उनके मन में अब भी
यह जानने का मोह
बाकी रहता है कि
दूसरे लोग मेरे बारे में
क्या कहते हैं?
उस मोह का भी अंत होना
चाहिए।"

पट्टिनत्तार गाता है :

खाया हुआ खाना
पुनः पुनः खाता हुआ
पहना हुआ वस्त्र ही
पुनः पुनः पहनता हुआ
कहा हुआ व्यर्थ वचन ही
पुनः पुनः कहता हुआ
सुना हुआ व्यर्थ वचन ही

पुनः पुनः सुनता हुआ
दृष्ट दृश्यों को ही
पुनः पुनः देखता हुआ
ओह मेरे शिव!
मुझको तुझसे प्रदत्त सारे दिन
मैंने व्यर्थ कर दिए!

(6)
माँ की चिता के सामने

पट्टिनत्तार माँ की
चिता के सामने
हृदयविदीर्ण हो गाता है :

दस महीने मुझे
गर्भ में ढ़ोती हुई
संपूर्ण अंग दर्द अनुभव कर
जन्म देते समय
मेरा चेहरा देखते ही
सारी वेदनायें भूलकर
सानंद मुझे लेकर
स्तन्यदान करती मेरी माँ को
आगे मैं किस जन्म में देख
पाऊँ?

सदा समय
शिव के ध्यान में पिघलकर
तीव्र तप करके
मुझे जन्म देनेवाली
माँ की देह पर
मैं कैसे आग जलाऊँ?

छाती पर और कंधे पर रखकर
और पालने एवं खाट पर
लिटाकर
लोरियाँ गाती हुई मुझे
सुलानेवाली
अपनी माँ की देह पर
मैं कैसे आग जलाऊँ?

मुझे बिना दुख पहुँचाये
मुझे उठाती हुई
स्तनपान कराती हुई पालनेवाली
और दिन-रात
बिना छोड़े ही
रखवाली करनेवाली
मेरी माँ की देह पर
मैं कैसे आग जलाऊँ?

मुझे दुलारती हुई
रोज मुझे मधु अमृत,
सुमन, हिरन,
लाडला बेटा यों पुकारती हुई
मुझे चूमती माता की देह पर
मैं कैसे आग जलाऊँ?

आदि में शिव ने
त्रिपुर को जला डाला
बाद में हनुमान ने
लंका को जला डाला
मेरी माँ ने
मेरे निचले पेट में आग जलाया
अब मैं माँ की देह में
आग डालता हूँ।

कल मेरी माँ
घर के बरामदे में
बैठ रही थी।

वह राह देख रही थी
कि बेटा कभी इस रास्ते से
आएगा।

गली से होकर जानेवालों को
प्यार भरे नयनों से
देखती हुई बैठी थी।

आज
अभी
मेरी माँ
इस श्मशान में जलकर

राख बन गई

ऐसा सब
सोचकर
दुखित होकर
कोई न रोए,
सब कुछ शिवमय!

रोज़ श्मशान में
अनगिनत शवों को
जलते देखने पर भी
हम सोचते हैं कि
सिर्फ़ हमें
मृत्यु नहीं होगी।

ओह शिव!
मैंने नहीं जाना कि
सब कहीं भरे
अखण्ड बोध स्वरूप
तू ही है
प्रकाश के रूप में
सूर्य के रूप में
चंद्र के रूप में
मेरे भीतर के अहं के रूप में
अग्नि के रूप में
और आकाश के रूप में
स्थित है।

ओह शिव!
मैंने नहीं जाना कि
सब कहीं भरे
अखण्ड बोध स्वरूप
तू ही है
माँ के रूप में
पिता के रूप में
बंधुओं के रूप में
और मित्रों के रूप में
आये हैं! क्रमशः)

आत्मकथा

देवयानम्

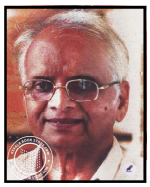

अनुवाद : प्रो. के.एन.ओमना

मूल : डॉ.वी.एस. शर्मा

आठवाँ देवपद - स्यानन्दूरपुरम

(पूर्वप्रकाशित से आगे)

प्रसिद्ध छायाग्राहक एवं फिल्म-निर्माता श्री शिव मेरे बचपन का दोस्त था। तिरुवनंतपुरम में उन्होंने 'शिवन्स स्टुडियो' की स्थापना की थी। पहले वे 'पारमौण्ड' स्टुडियो में काम करते थे। यहाँ की प्रमुख प्रकाशन संस्था थी श्रीरामविलास जिसके कर्मचारियों के साथ उनको निकट का संबंध था। इस संस्था का मुख्य कार्यालय कोल्लम में था। 'मलयालराज्यं' नामक पत्र तथा चित्र पत्रिका का प्रकाशन यहाँ से, मतलब कोल्लम के दफ्तर से होता था। इनका मुख्य संपादक श्री कैनीक्करा पद्मनाभ पिल्लै ने 1960 में अपना यह काम छोड़ दिया था। तब अपने दोस्त शिव ने मेरे बारे में उन लोगों से कह कर वहाँ मेरी नियुक्ति करा दी थी। हरिप्पाटु से कोल्लम तक जाना-आना कोई कठिन बात नहीं थी। साथ ही घर के दायित्वों का निर्वहण भी आसानी से हो जाएगा। इसलिए मैंने यह काम स्वीकार कर लिया। इसी बीच मेरी बहिन शारदा देवी अपनी एस.एस.एल.सी की परीक्षा में उत्तीर्ण हो गई थी। लेकिन आगे की पढ़ाई के लिए उसे दूर कहीं भेजना हमारी माँ को बिलकुल पसंद नहीं था। इसलिए घर पर ही उसे संगीत एवं सिलाई पढ़ाने का प्रबंध किया गया था। संगीतज्ञ श्री मलबार रामन नायर उनकी पत्नी श्रीमती कमलाक्षियम्मा, श्री रामनकुट्टी नायर आदि अध्यापक उसे संगीत पढ़ाते थे। सिलाई की अध्यापिका हमारे घर पर रहती थी।

हमारे पिताजी की यह इच्छा थी कि अपनी बेटी की शादी पूविल्लं नामक घर के श्री उण्णियप्पन मूत्ततु के साथ हो। उनके चाचा श्री वी.के. मूत्ततु ने अब यह प्रस्ताव रखा तो वह स्वीकार किया गया था। 1955 में यह शादी संपन्न हुई थी। पिता जी के अभाव में आचार के अनुसार कन्यादान करने का दायित्व मेरा था। शादी के बाद वर के घर में वधू का 'गृहप्रवेश' आदि भी विधि के अनुसार समंगल हो गया था। इस समय श्री उण्णियप्पन मूत्ततु तो बी.ए. की परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया था; लेकिन उसे कोई नौकरी नहीं मिली थी। कुछ दिन बाद उसे फेडरल बैंक की नौकरी मिली थी जो बाद में स्टेट बैंक ऑफ ट्रावनकूर का भाग बन गया था। मेरी बहिन मद्रास सरकार की तकनीकी परीक्षा (टेकनिकल परीक्षा) में पास होकर घर के पासवाले मण्णाऱशाला स्कूल की अध्यापिका बनी थी। उनके दो बेटे हैं एवं चार बेटियाँ भी हैं। प्रथम बेटा इंदुलाल डॉक्टर है और वह तमिलनाडु के कोयम्पत्तूर आर्यवैद्यशाला में काम करता हैं। मेरे भाई की बेटी अपर्णा के साथ उनकी शादी हुई थी जो कोयम्पत्तूर के पुनर्नवा नामक आयुर्वेदिक संस्था के प्रशासनिक अधिकारी है। (क्रमशः)

प्रश्नोत्तरी

डॉ. रंजीत रविशैलम

1. 'पद्मावत' किस भाषा की रचना है?
2. 'तसव्वुफ' किसे कहते हैं?
3. बाणभट्ट की आत्मकथा का रचनाकार कौन हैं?
4. सूरदास के जीवन पर केंद्रित अमृतलाल नागर के उपन्यास का नाम क्या है?
5. 'भाषा का जादूगर' किसे कहा जाता है?
6. 'सेवक की प्रार्थना' किसकी कविता है?
7. 'बुढ़ापा' किसकी निबंध रचना है?
8. 'बकलम खुद' किसका निबंध संग्रह है?
9. औचित्य संप्रदाय का प्रवर्तक किसे माना जाता है?
10. 'जदपि सुजाति सुलच्छनी सुबरन सरस सुवृत्त'- किसकी पंक्ति है?
11. भट्ट लोल्लट का उत्पत्तिवाद किस दार्शनिक मत पर केंद्रित है?
12. 'न्यू एसेज ऑन एस्थेटिक' किसकी रचना है?
13. साक्षात्कार विधा के प्रवर्तक कौन हैं?
14. लहना सिंह किस कहानी का मुख्य पात्र है?
15. 'एक टोकरी भर मिट्टी' किसकी कहानी है?
16. दक्खिनी हिंदी के प्रथम गद्य लेखक किसको माना जाता है?
17. 'श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है' - किसका कथन है?
18. 'हरडेबानी' किसकी रचना है?
19. मैथिली शरण गुप्त के गुरु का नाम क्या है?
20. रांगेय राघव का मूलनाम क्या था?

उत्तर

1. अवधी
2. सूफी दर्शन को
3. आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी
4. खंजन नयन
5. शिवपूजन सहाय
6. महात्मा गाँधी
7. पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र'
8. नामवर सिंह
9. क्षेमेंद्र
10. केशवदास
11. मीमांसा दर्शन
12. क्रोचे
13. पं. बनारसीदास चतुर्वेदी
14. उसने कहा था
15. माधव प्रसाद सप्रे
16. ख्वाजा बंदा नेवाज गेसूदराज
17. आचार्य रामचंद्र शुक्ल
18. दादू दयाल
19. महावीर प्रसाद द्विवेदी
20. त्र्यंबक वीर राघवाचार्य

आचार्य (B.Ed.) कॉलेज एवं विद्याभ्यासा विकास केन्द्र के संयुक्त तत्वावधान में
आयोजित एक दिवसीय संगोष्ठी (ITEP) का उद्घाटन
केरल विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो.(डॉ) मोहनन कुन्नुम्मल कर रहे हैं।

डॉ.एन.सी.इंद्रचूडन, श्री.जोबी बालकृष्णन, डॉ.रघु वी.

सभा के मंत्री अधिवक्ता (डॉ) बी. मधु, डॉ.मालिनी पी.एम, डॉ.पी.जे.शिवकुमार

RNI No. 7942/1966
Date of Publication :15-03-2024
Date of posting : 20th of Every month

KERAL JYOTI

MARCH 2024

Vol. No. 60, Issue No.12
Regn. No. KL/TV(S) 381/2022-2024
Price Rs. 25/-

A monthly Publication of Kerala Hindi Prachar Sabha approved for School Libraries by the Education Dept., Govt. of Kerala as per notification No. B-3 / 4036/83 SIE dated 20-9-1985
Approved by University of Kerala as per order No. Ac. A II / 1 / 31965 / Std. Journals/2013 / dtd : 27-6-2013

मोहनन कुन्नुम्मल भाषण दे रहे हैं

आदर्श विद्यालय के वार्षिकोत्सव में
श्री. कडन्नपल्ली रामचन्द्रन भाषण दे रहे हैं।

केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवनंतपुरम-695014 के लिए मंत्री अ.व.डॉ.मधु बी द्वारा प्रकाशित, राष्ट्रवाणी मुद्रणालय, केरल हिंदी प्रचार सभा, तिरुवननंतपुरम-695014 में मुद्रित, प्रो.डी.तंकप्पन नायर व डॉ.रंजीत रविशैलम द्वारा संपादित

Published by the Secretary, Adv. Dr. B. Madhu for Kerala Hindi Prachar Sabha, Tvpm-695014
Printed at Rashtravani Mudranalaya, Kerala Hindi Prachar Sabha, Tvpm-695014 & edited by Prof.D.Thankappan Nair & Dr.Renjith Ravisailam